Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विज्ञान-लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## अन्दर पढ़िए


आयुर्वेद ३
—ओमप्रकाश गुप्ता

लेसर-रश्मियां ६
—सन्तोषकुमार श्रीवास्तव

कीटाणु-शास्त्र का विकास और प्रगति १६
—डा. हर्ष प्रियदर्शी

मोतियों की खेती २३
—रूपनरायण मोहिले

पृथ्वी से टकराने वाले कण २९
—राजेन्द्रप्रसाद वार्ष्णेय

घर में बिजली की लाइन डालना ३७
—रमेशप्रसाद शर्मा

हलदी ४१
—आर. एन. सिंह

परमाणु-शक्ति ४५
—वीरेन्द्रकुमार भटनागर

विज्ञान के बढ़ते चरण··· ५१
—तेजनारायण सक्सेना

**स्थायी स्तम्भ**

वैज्ञानिक उपलब्धियां २७
विचित्र संसार ३५
विज्ञान क्लब ५३
इनाम लो ५६
करो और देखो ५७


## अपनी बात

एक वर्ग विशेष के लिए यह धारणा प्रमुख है कि विज्ञान के विकास से कला का ह्रास हुआ है। कला विघटित होकर आधुनिक कहलायी है। कला के वास्तविक महत्त्व की पुनर्स्थापना तभी सम्भव है जब विज्ञान को प्राथमिकता न दी जाय।

उपरोक्त धारणा अत्यन्त भ्रामक है। एक सन्दर्भ में कला का ह्रास हुआ है, और इसलिए क्योंकि पिछली कुछ शताब्दियों में वह विकास-धारा से छूटी रही है। इतिहास काल के प्रारम्भ से बहुत पीछे जायें और उस युग पर दृष्टिपात करें जो सभ्यताओं के विकास का युग कहलाता है, तो पायेंगे कि विज्ञान और कला का विकास साथ-साथ हुआ। किन्तु यह एक तथ्य है कि वर्तमान शताब्दी में विज्ञान का जितना विकास हो चुका है, उतना कला का नहीं।

विज्ञान हमेशा सम्भावनाओं पर आश्रित रहा है, अतः वह निरन्तर विकासशील रहा है। कला का विकास आशातीत रूप से इस लिए प्रोत्साहित नहीं हो पाया, क्योंकि अनेक शताब्दियों तक इसे रुद्ध रहना पड़ा। विभिन्न कलाकारों की मान्यताएं तथा परम्परागत रंग और लकीरें इसका आधार बनी रहीं।

वर्तमान शताब्दी ने वैज्ञानिक संस्कृति को जन्म दिया है जो धीरे-धीरे सार्वत्रिक हो रही है। सम्प्रति काल का वह बिन्दु है जब यह अपेक्षा हो सकती है कि विज्ञान और कला के प्रति हमारी संवेदनशीलता में भेद न रह जाय, क्योंकि उद्देश्य दोनों का एक है— सत्य का अन्वेषण।


वर्ष ७ अंक ३

विज्ञान लोक

एक प्रति : ७५ पैसे
वार्षिक : ९ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा
प्रकाशक : मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा-३


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय 6.5.66

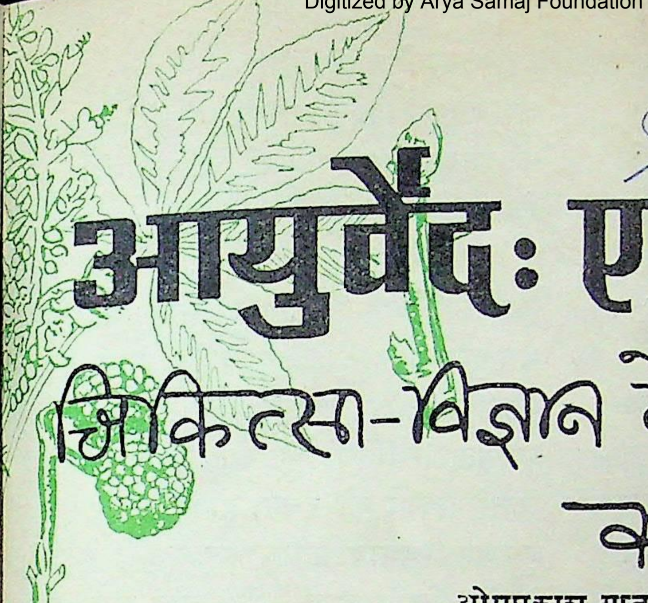

# आयुर्वेद: एक सन्दर्भ

## चिकित्सा-विज्ञान के विकास-क्रम का अध्ययन

ओमप्रकाश गुप्ता

विज्ञान के विकास से पूर्व का चिकित्सा-विज्ञान रोग दूर करने की उन विधियों तक ही सीमित था जो आदिम मनुष्यों में प्रचलित थीं। आदिम मनुष्य सीखने की प्रक्रिया से धीरे-धीरे गुजर रहा था, लेकिन बीमारियों और चोटों का ज्ञान उसे हो गया था। वह पीड़ा के प्रति चैतन्य था और उसकी धारणा थी कि बीमारियों में मुख्यत: व्यक्ति को पीड़ा सहनी पड़ती है। लेकिन वह युग रोगों के उपयुक्त निदान से वंचित रहा। अधिकांशतः यह माना जाता रहा कि 'अशुभ' (Evil) शक्तियों के शरीर पर प्रक्षेपण से ही रोग उत्पन्न होते हैं।

धीरे-धीरे आदिम मनुष्य सभ्य हुआ। विश्व के विभिन्न भागों में अनेक सभ्यताएं विकसित हुईं। प्रत्येक सभ्यता के अन्तर्गत एक विशिष्ट चिकित्सा-पद्धति का विकास हुआ।

### मिस्र की चिकित्सा-पद्धति

प्राचीन चिकित्सा-पद्धतियों में मिस्र की चिकित्सा-पद्धति प्रमुख है। इसके अन्तर्गत जादू-टोना तथा परम्परागत क्रियाओं का समावेश था। मुख्य रूप से चिकित्सक होते थे मन्दिरों के पुजारी। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत वे एक मुख्य चिकित्सक के अधीन थे और उसके निर्देशों का पालन करते थे। चिकित्सा-विज्ञान में वे स्वास्थ्य तथा भोजन के नियम समाविष्ट मानते थे।

प्राचीन मिस्र के इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि फिरौन राजाओं के तृतीय वंश के शासक जोसर (३००० ई.पू.) का एक व्यक्तिगत चिकित्सक था। उसका नाम इम्होटेप था। लोग उसे देवता मानने लगे थे, क्योंकि वह चिकित्सकों में अत्यन्त कुशल था। बाद के काल में उसके लिए मिस्र में मन्दिर भी बने। जार्ज एबर्स और इडविन स्मिथ पेपिरस से पता चलता है कि धीरे-धीरे मिस्र के चिकित्सकों को शरीर-शास्त्र का भी ज्ञान हो गया था; वे शल्य-चिकित्सा भी करने लगे थे।

### मेसोपोटामिया की चिकित्सा-पद्धति

मेसोपोटामिया की सभ्यता के अन्तर्गत भी एक विशिष्ट चिकित्सा-पद्धति का विकास हुआ, लेकिन अन्धविश्वास से चिकित्सक मुक्त नहीं थे। उनका मत था कि 'प्रेतों' के शरीर में प्रवेश करने से रोग उत्पन्न होता है, अत: रोगों के निदान के लिए आवश्यक है कि 'प्रेतों' को शरीर में से बाहर निकाला जाय। हम्मुराबी संहिता में शल्य-चिकित्सा के कुछ वर्णन प्राप्य हैं। उनसे यह ज्ञात होता है शरीर रचना-विज्ञान से चिकित्सक अनभिज्ञ नहीं थे। विभिन्न रोगों के लिए भांति-भांति की दवाएं



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी प्रचलित थीं। उनमें तारपीन, सरसों अरण्ड आदि प्रमुख थे।

**पश्चिम में विकसित प्रथम चिकित्सा-पद्धति**

यूनानी चिकित्सा-पद्धति पश्चिम में विकसित प्रथम वैज्ञानिक चिकित्सा-पद्धति है। ईसा पूर्व ५०० से रोम के साम्राज्य के उत्थान तक इसका विकास होता रहा। एशिया माइनर के भूमध्यसारीय क्षेत्र में यह पद्धति अत्यन्त प्रचलित रही। एथेन्स तथा यूनानी उपनिवेश सिसली और इटली भी इसके विकास के प्रमुख केन्द्र रहे। इस चिकित्सा-पद्धति की विभिन्न शाखाएं हैं। पश्चिमी एशिया माइनर के यूनानियों ने इन शाखाओं से उपचार की प्रणालियों का विकास करते हुए ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी के आसपास एक दार्शनिक पद्धति का प्रतिपादन किया जिसके अनुसार उनकी यह चिकित्सा-पद्धति प्राकृतिक रूप से विकसित हुई। इस दार्शनिक पद्धति के प्रतिपादन में कास के चिकित्सा विद्यालय मुख्य सूत्र रहे। यह उल्लेख्य है कि कास में हिप्पोक्रीटस का जन्म हुआ था। इसे 'हिप्पोक्रीटस संग्रह' कहा गया।

ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में यूनानी चिकित्सा-विज्ञान वैज्ञानिक चेतना का एक अंश बनकर विकसित हुआ। एक ऐसे व्यक्तित्व की छाया इस पर पड़ी जो चिकित्सा-विज्ञान के लिए अविस्मरणीय है। अरस्तू (३८४-३२२ ई. पू.) प्राचीन विज्ञान का जन्मदाता माना जाता है। उसने अपने विज्ञान के अन्तर्गत चार मूलभूत गुण स्वीकार किये हैं; ये हैं—गरमी, ठण्डक, गीलापन और सूखापन। ये मिलकर चार मूलभूत स्थितियों को अस्तित्वगत करते हैं जिनसे पदार्थ की रचना होती है। इन चार मूलभूत स्थितियों को अरस्तू ने तत्त्व कहा है; ये हैं—क्षिति, वायु, अग्नि और जल। अन्य समकालीन चिकित्सकों ने अरस्तू के इस प्रतिपादन का लाभ उठाते हुए यूनानी चिकित्सा-पद्धति का विकास किया।

अत्यन्त उपयोगी पादप ब्राह्मी

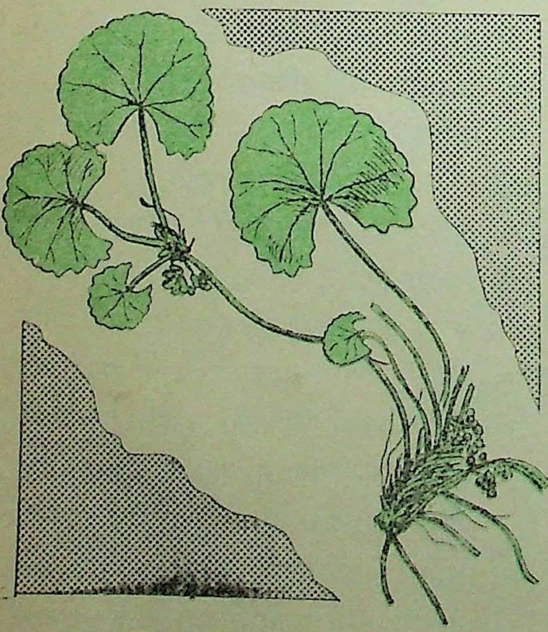

**सिकन्दरिया विद्यालय**

३२२ ई. पू. में, अरस्तु की मृत्यु के बाद सिकन्दरिया में एक बहुत बड़ा चिकित्सा-विज्ञान का विद्यालय खुला। उसके पहले दो चिकित्सक हेरोफिलस और इरासिस्त्रातुस हुए। हेरोफिलस शरीर चिना-विज्ञान का पिता माना जाता है और इरासिस्त्रातुस क्रिया-विज्ञान का।

**रोम के शासन में चिकित्सा**

रोम की चिकित्सा-पद्धति प्रारम्भ में एक अविकसित सभ्यता की चिकित्सा-पद्धति-जैसी थी। यूनानी चिकित्सा-पद्धति के प्रभाव के साथ ही इसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। रोम में प्रारम्भ में चिकित्सा-विज्ञान की शिक्षा लोग व्यक्तिगत रूप से लेते थे। यूनान का एस्क्लीपीडीस आरम्भिक विज्ञान-शिक्षक था। उसने हिप्पोक्रीटस के विचारों का विरोध किया।

उसके प्रयत्नों से धीरे-धीरे रोम में चिकित्सा-विज्ञान का विकास हुआ। वे पुरानी धारणाएं जो अन्धविश्वासपूर्ण थीं, दूर हुईं और चिकित्सक बौद्धिक आधार पर अपनी जिज्ञासाओं का हल ढूंढ़ने लगे।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

### जनता के लिए चिकित्सा सेवा

रोम में प्रारम्भिक शासनकाल में जनता के लिए चिकित्सा-सेवा उपलब्ध थी। विभिन्न नगरों में डाक्टर नियुक्त थे। अस्पताल की सुविधा की पहल रोम ने ही की। यात्रियों तथा सैलानियों के लिए रोम में जगह-जगह अस्पताल बने थे।

### …और पूर्व में

पूर्व की चिकित्सा-पद्धति अत्यन्त प्राचीन काल से ही विकसित थी। प्राचीनतम उल्लेख अथर्ववेद में प्राप्य है जो सम्भवत: २००० ई.पू. का है। परवर्ती साहित्य के अनुसार आयुर्वेद को धन्वन्तरि ने ब्रह्मा से प्राप्त किया था। धन्वन्तरि देवताओं के चिकित्सक थे। बाद में उनकी मर्यादा कुछ कम हुई जब वे इस पृथ्वी पर के राजा हुए। परम्परागत मन्यताओं के अनुसार सर्प के काटने से उनकी मृत्यु हुई। इस सन्दर्भ में एक कथा है जिसके अन्तर्गत धन्वन्तरि का सम्पर्क सांपों से प्रकट होता है, और ज्ञात होता है कि किस तरह प्राचीन भारतीय चिकित्सक सांप के काटे का इलाज करते थे।

वैदिक काल की चिकित्सा-पद्धति का युग ८०० ई. पू. तक रहा। वेद में प्राप्य वर्णनों से किसी वैज्ञानिक चिकित्सा-पद्धति का आभास नहीं मिलता। 'दुष्टात्माओं' के कारण ही रोग उत्पन्न होते हैं, यह उस काल के ऋषियों की धारणा थी। बुखार, सर्दी, मस्तिष्क विद्रधि, चर्म रोग आदि का उल्लेख भी मिलता है। निदान के लिए मुख्य रूप से विभिन्न प्रकार के पादपों का ही उपयोग वर्णित है। यह कह सकते हैं कि आयुर्वेद ही विश्व की प्राचीनतम प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति है

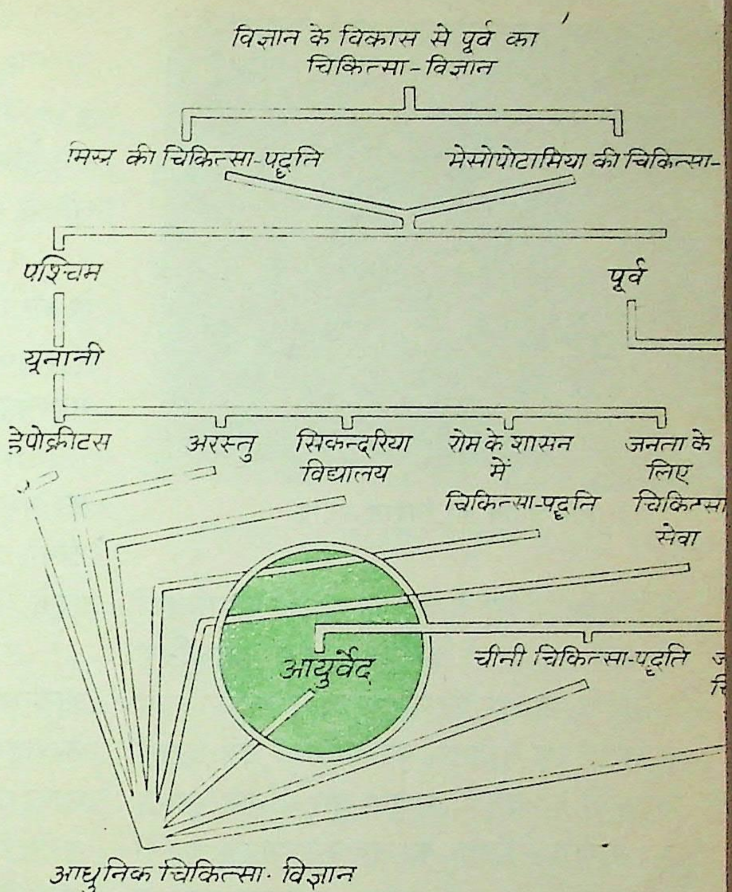


**प्राचीन चिकित्सा-विज्ञान से आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान तक की प्रमुख प्रवृत्तियां**

जिसके अन्तर्गत ओषधियां प्राकृतिक अवस्था में प्राप्त होती हैं। हां, अब तक आयुर्वेद में जो परिवर्तन हुए हैं उनके परिणामस्वरूप कृत्रिम रूप से भी आयुर्वेदिक औषधियां तैयार की जाने लगी हैं लेकिन वैदिक युग में मुख्यत: पादपों के प्रयोग द्वारा ही रोगों का निदान होता था।

८०० ई. पू. से १००० तक का काल आयुर्वेद के विकास की दृष्टि से स्वर्ण युग कहा जा सकता है। इस युग में चरक और सुश्रुत-जैसे मनीषियों के कार्य क्रमश: चरक संहिता और सुश्रुत संहिता के रूप में उपलब्धि बने। प्रारम्भ में तो लोगों की धारणा थी कि चरक संहिता और सुश्रुत संहिता अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ हैं। तब एक विवाद खड़ा हो गया कि भारतीय चिकित्सा-पद्धति और यूनानी चिकित्सा-पद्धति में प्राचीनतर कौन है। कुछ विद्वानों का मत


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फीलपांव का निदान मदार

है कि ईसवी सन् के प्रारम्भ के कई शताब्दियों के बाद इन ग्रन्थों की रचना हुई। आधुनिक शोधों के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि चरक संहिता का वर्तमान रूप पहली शताब्दी की देन है, यद्यपि मूल अधिक पुराना है। सुश्रुत संहिता का लेखन सम्भवतः पहली शताब्दी ई. पू. में हुआ। वर्तमान रूप में आते-आते सात-आठ शताब्दियां बीत गयीं। चौथी और छठी शताब्दी की कुछ पाण्डुलिपियों में सुश्रुत संहिता का उल्लेख मिलता है। बाद के युगों में चिकित्सा-सम्बन्धी जो ग्रन्थ लिखे गये वे मुख्य रूप से इन्हीं दो ग्रन्थों पर आधारित हैं।

प्राचीन भारत में एक परम्परागत निषेध था कि मृतक के शरीर पर शल्यक्रिया नहीं हो सकती। इसी कारण उस युग के चिकित्सकों का शरीर रचना-विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञान अधूरा था। सुश्रुत ने यह निर्देश दिया है कि मृतक को एक टोकरी में रखकर सात दिन तक नदी के पानी में डुबाये रखना चाहिये। सात दिन के बाद मृतक को पानी से बाहर निकालना चाहिये। फिर उसके शरीर के भाग सरलता से पृथक किये जा सकते हैं। प्राचीन चिकित्सकों ने इस तरह अस्थियों और मांसपेशियों के सम्बन्ध में प्रचुर ज्ञान प्राप्त कर लिया था, किन्तु रक्त-संस्थान तथा स्नायु-संस्थान के सम्बन्ध में वे पूर्णतः अनभिज्ञ थे। उन्होंने ३६० अस्थियों, २१० अस्थि जोड़ों तथा ५०० मांसपेशियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर ली थी।

चरक और सुश्रुत, दोनों ने भांति-भांति के रोगों की चर्चा की है। सुश्रुत के अनुसार १,१२० प्रकार के रोग होते हैं। ज्वर को महत्त्वपूर्ण रोग उन्होंने स्वीकार किया।

आयुर्वेद में आहार और ओषधि, दोनों का महत्त्व है। ओषधि का सेवन करते हुए भी रोगी को आहार में कुछ परहेज बरतने पड़ते थे।

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात आयुर्वेद के सम्बन्ध में यह है कि प्रारम्भ से ही इस पद्धति के अन्तर्गत वनस्पतियों को औषधीय महत्त्व का माना गया। और विशेष-विशेष वनस्पतियों का अलग विभाग निर्धारित हुआ। चरक ने ५०० औषधीय महत्त्व की वनस्पतियों का उल्लेख किया है और सुश्रुत ने ७६०। इसके अतिरिक्त दूध, धातु आदि के सेवन का भी विधान था। स्वास्थ्य के सामान्य नियमों की ओर भी चिकित्सक ध्यान देते थे। रोगी का पानी पीना और स्नान करना भी चिकित्सक के निर्देश पर निर्भर रहता था।

चिकित्सक ओषधि के रूप में विभिन्न रोगों के लिए रोगी की आयु के अनुसार पादप-ओषधि की मात्रा निश्चित करते थे। निम्न-लिखित पंक्तियों में कुछ ऐसी ही वनस्पतियों का उल्लेख करेंगे। ये आयुर्वेदिक चिकित्सा की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी हैं।

**महत्त्वपूर्ण पादप**

उत्तरी समशीतोष्ण कटिबन्ध के प्रमुख पादप लहसन के रस से तैयार की गयी ओषधि क्षय रोग तथा फेफड़ों की सूजन में लाभकारी होती है। कान के दर्द की भी यह अचूक ओषधि है। भारत के सभी भागों में पाये जाने वाले



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुड़हल की जड़ों से अनेक आयुर्वेदिक ओषधियों का निर्माण होता है। जड़ों का काढ़ा सुजाक के रोगियों को दिया जाता है। पिपरसूल की जड़ें फेफड़ों के दीर्घ स्थायी सूजन में तथा सर्प और बिच्छू के काटने से विष दूर करने में उपयोगी होती हैं।

मदार के पौधे का प्रत्येक भाग ओषधीय महत्त्व का होता है। इसकी जड़ों की छाल का रस पेचिस लाने वाली ओषधि है। अपराजिता की जड़ें पेट साफ करने वाली तथा मूत्रवर्धक होती हैं। सांप के काटने में भी इसका उपयोग होता है। करौंदा की जड़ों से आंत के कीड़े निकल जाते हैं। अबल की जड़ का उपयोग चर्मरोग में होता है।

ब्राह्मी के पत्तों के रस का उपयोग सन्धि-वात रोग में होता है। खांसी एवं बलगम में ब्राह्मी का पंचांग उबालकर पुल्टिस के रूप में रोगी की छाती पर फैलाकर रख देते हैं। ब्राह्मी से अब अनेक प्रामाणिक योग भी तैयार किये जाने लगे हैं।

औषधीय महत्त्व का विशेष रूप से उल्लेखनीय पादप केसर (मुखपृष्ठ) है। इसका फूल नील-लोहित होता है जो शरद् के बाद फूलता है। इस पादप का ज्ञान प्राचीन काल से ही विश्व की विभिन्न सभ्यताओं में रहा

अग्निवर्धक ओषधि करौंदा

महत्त्वपूर्ण आयुर्वेदिक ओषधियों के लिए गुड़हल

है। इतिहासकारों का मत है कि चिकित्सक इसका उपयोग चिकित्सा में करते रहे हैं। ईरान और कश्मीर में यह एक लम्बे समय से उपजाया जाता रहा है। आयुर्वेद में इसका अनन्य महत्त्व है। चीनी चिकित्सा-पद्धति के अन्तर्गत भी यह औषधीय महत्त्व का पादप स्वीकार किया गया है।

**चीनी चिकित्सा-पद्धति**

चीनी चिकित्सा-पद्धति भी अत्यन्त प्राचीन है। ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि किसी अन्य चिकित्सा-पद्धति का इस पर प्रभाव पड़ा हो।

परम्परागत चीनी कथाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि फु हसी (२९५३ ई. पू.) इसका जन्मदाता था। इसके बाद शेन नंग (२८३८-२६९८ ई. पू.) तथा हुआंग ती (२६९८-२५९८ ई. पू.) नामक राजाओं द्वारा इसका प्रसार हुआ।

चीनी चिकित्सा-पद्धति का मुख्य आधार यंग और चिन का दार्शनिक सिद्धान्त है। यंग नर स्वभाव है और प्रकाश है; यिन मादा स्वभाव है और अन्धकार है। यंग स्वर्ग का प्रतीक है और यिन पृथ्वी का। पदार्थ की ही भांति शरीर पांच तत्त्वों से बना है—काष्ठ, अग्नि, क्षिति, वायुमण्डल की धातु तथा जल;



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इनसे सम्बद्ध हैं पांच ग्रह, पांच स्थितियां, पांच रंग तथा पांच ध्वनियां।

चिकित्सा-विज्ञान के इतिहासकारों की धारणा है कि चीनियों को ही सर्वप्रथम नब्ज देखने की कला का ज्ञान हुआ। चांग शी हो (२८०) ही प्रथम व्यक्ति था जिसने इस कला का विकास किया।

चीनी चिकित्सा-पद्धति में भी विभिन्न वनस्पतियों के उपयोग का विधान है। प्राचीन काल से ही चीन में अनेक जड़ी-बूटियां ज्ञात हैं। इनकी संख्या करीब १,००० है। इनके उपयोग के सम्बन्ध में समय-ससय पर चिकित्सक निर्देश देते रहे हैं।

**जापान की चिकित्सा-पद्धति**

प्राचीन काल से ही जापान में भी एक मौलिक चिकित्सा-पद्धति का प्रचलन रहा है, किन्तु तीसरी शताब्दी में वहां चीनी चिकित्सा-पद्धति का प्रचलन हुआ। यह प्रभाव लगभग १६वीं शताब्दी तक बना रहा। इसके बाद आधुनिक चिकित्सा-पद्धति वहां व्यवहार में आयी। जापान की अपनी परम्परागत चिकित्सा-पद्धति बाहरी प्रभाव से जल्द ही समाप्त हो गयी, अत: उसके सम्बन्ध में पर्याप्त सूचनाओं का अभाव चिकित्सा-विज्ञान के इतिहासकारों के लिए रहा।

...फिर अनेक शताब्दियों तक चिकित्सा-विज्ञान परिष्कृत किया जाता रहा। नयी-नयी सम्भावनाएं उससे जुड़ती रहीं, नये-नये प्रयोग होते रहे। पिछले चार सौ वर्षों में और विशेष रूप से पिछले पचास वर्षों में चिकित्सा-विज्ञान के क्षेत्र में कल्पनातीत प्रगति हुई है।

परन्तु यह निर्विवाद मान्य है कि चिकित्सा की प्राचीन पद्धतियां अर्थहीन नहीं थीं। चिकित्सा-विज्ञान के विकास-क्रम में आयुर्वेद का प्रमुख स्थान रहा। अन्य प्राचीन चिकित्सा-पद्धतियां समय के साथ-साथ पुरानी पड़ गयीं, किन्तु आयुर्वेद—पादपों की ओषधि से चिकित्सा करने की प्रणाली—आज भी वर्तमान चिकित्सा-विज्ञान के साथ-साथ प्रगति कर रहा है। क्योंकि आयुर्वेद मुख्य रूप से प्राकृतिक ओषधियों के आधार पर विकसित हुआ, अत: इसका महत्त्व तथा प्रभाव आज भी चिकित्सा-शास्त्रियों की जिज्ञासा का विषय बना हुआ है। ●

## उड़ने वाली रेलगाड़ी

**फ्रांस में एक बिना पहियों की रेलगाड़ी तैयार हो गयी है जो २०० किलोमीटर की रफ्तार से चलती है।**

**अभी तक यह रेलगाड़ी परीक्षण की अवस्था में है। लेकिन जो वैज्ञानिक इसे तैयार करने में लगे हुए हैं, उनका विश्वास है कि इसके व्यावहारिक रूप लेने और आकार में दुगनी हो जाने पर यह ४०० किलोमीटर प्रति घण्टा की रफ्तार से चल सकेगी।**

**यह पटरी से कुछ ऊंचाई पर उड़ती है और पटरी के घुमाव के अनुसार घूम जाती है। इसके चलाने के लिए स्टीयरिंग की आवश्यकता नहीं होती।**

**वर्तमान कार्यक्रम के अनुसार इस वर्ष के अन्त तक इस रेलगाड़ी को ल्यों-ग्रनोविल और पेरिस-ओर्लियो के बीच चलाने की योजना है।**

## शरीर में रक्तसंचार ज्ञात करने वाला नया उपकरण : रेडियोसर्कुलोग्राफ

**हंगरी में रेडियोसर्कुलोग्राफ नामक एक नये यन्त्र का विकास किया गया है। यह रेडियो-सक्रिय पदार्थों की सहायता से शरीर में रक्तसंचार के मार्ग के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी देता है। इसके द्वारा हृदय, यकृत, गुरदों तथा शरीर के अन्य अंगों में होने वाली खराबियों का पता चलता है। रोग के सही कारणों का निर्णय करने में भी इससे सहायता मिलती है।**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

76253

# लेसर-रश्मियां

76253

सन्तोषकुमार श्रीवास्तव, एम. एस-सी.

विज्ञान की दुनिया में सदैव कोई न कोई ऐसा आविष्कार हुआ करता है जो लोगों को आश्चर्यचकित कर देता है और जिसके बारे में जानने के लिए अनेक लोग उत्सुक हो जाते हैं। ऐसे ही अनेक आविष्कारों में लेसर भी है। अनेक सूर्यों के प्रकाश की तीव्रता को भी अपने आगे झुका देने वाला यह प्रकाश-स्रोत एक ऐसा आविष्कार है जिसके बारे में आज दुनिया के हर भाग में खोज हो रही है। केवल अमरीका में ही, जब इस आविष्कार को घोषित किया गया था तो अठारह महीनों के भीतर चार सौ कम्पनियों ने इस पर खोज करनी प्रारम्भ कर दी थी। ऐसा होना स्वाभाविक भी है। लेसर एक ऐसा प्रकाश-स्रोत है जिसके उपयोगों का कोई अन्त नहीं। शल्य-चिकित्सक की मेज पर पड़े हुए जीवन और मृत्यु से लड़ते रोगी को जीवनदान देने से लेकर युद्ध में दुश्मनों को मृत्यु के मुख में पहुंचाने में लेसर का उपयोग होता है।

इस आश्चर्यजनक आविष्कार की आयु बहुत अधिक नहीं है। सर्वप्रथम १९५८ में अमरीका के शैलो और टाउंस ने लेसर के सिद्धान्त के बारे में सुझाव दिया था। इस आविष्कार पर संसार के तीन वैज्ञानिकों को नोबल पुरस्कार भी मिला। १९६० में अमरीका के वैज्ञानिक मेमैन ने संसार का पहला लेसर बनाया।

लेसर द्वारा प्रकाश का अभिवर्धन किया जाता है। अंगरेजी में इसका पूरा नाम है—'लाइट एम्प्लीफिकेशन बाई स्टीमुलेटड एमिशन आफ रेडियेशन।' इसके द्वारा एक ही तरंग का बहुत ही तीव्र प्रकाश उत्पन्न किया जाता है। अभी तक तीन प्रकार के लेसर बनाये गये हैं। उनके नाम हैं— (अ) गैस लेसर, (ब) ठोस लेसर एवं (स) अर्ध-चालक लेसर (semi-conductor laser)।

**लेसर उपकरण की रचना**

जिस उपकरण से लेसर रश्मियां उत्पन्न की जाती हैं उसकी रचना साधारण है, परन्तु उसके विभिन्न भागों को बनाना एक जटिल समस्या है। इस उपकरण का मुख्य अंग एक छड़ है जो लगभग चार सेण्टीमीटर लम्बी तथा आधा सेण्टीमीटर व्यास की होती है। यह रुबी नामक पदार्थ के मणिभ (crystal) को काटकर बनायी जाती है। इस छड़ के दोनों किनारों को समतल तथा एक-दूसरे के समानान्तर बनाया जाता है। दोनों सतहों पर चांदी का मुलम्मा चढ़ाया जाता है। ऐसा करने से इनमें प्रकाश को परावर्तित करने की क्षमता आ जाती है। एक सतह प्रकाश को लगभग पूरी तरह परावर्तित कर देती है और दूसरी सतह प्रकाश का केवल कुछ ही भाग परावर्तित करती है। इस छड़ के चारों ओर एक बहुत ही तीव्र प्रकाश देने वाली इलेक्ट्रानिक नलिका (electronic tube) लिपटी रहती है।

इस उपकरण से लेसर-रश्मियां उत्पन्न करने के लिए इलेक्ट्रानिक नलिका को चलाया जाता है। इसके प्रारम्भ करने के कुछ देर बाद ही छड़ के एक किनारे से बहुत ही तीव्रता वाले प्रकाश का



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुंज बाहर निकलता है। यह प्रकाश गहरे लाल रंग का होता है और इसकी तरंग लम्बाई ६९४३ $\times$ १०$^{-८}$ सेण्टीमीटर होती है।

**लेसर-रश्मियों की विशेषताएं**

लेसर-रश्मियों की विशेषताएं ही ऐसी हैं जिनके कारण इन्होंने विज्ञान की दुनिया में धूम मचा दी है। बिजली के बल्ब अथवा जलती हुई मोमबत्ती से जो प्रकाश निकलता है, उसकी तीव्रता बहुत कम होती है। इनसे निकला हुआ प्रकाश प्रायः कला सम्बद्ध भी नहीं होता है। हम यहां सर्वप्रथम यह समझने का प्रयत्न करेंगे कि प्रकाश के लिए कला सम्बद्धता गुण से क्या अभिप्राय है। आपने कभी बाजार में चलती भीड़ ध्यान से देखी होगी। इस भीड़ में कोई नियमितता नहीं होती है। सभी के कपड़े भिन्न होते हैं। उनके चलने की विधि अलग-अलग होती है और उन सभी के उद्देश्य भी भिन्न-भिन्न होते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि ऐसी भीड़ में असम्बद्धता होती है। परन्तु आपने सड़क पर सैनिकों को भी मार्च करते देखा होगा। सभी एक रेखा में बहुत नियन्त्रण के साथ चलते हैं। सबके दायें पैर एक साथ उठते हैं और सब दायें हाथ एक साथ आगे बढ़ाते हैं। यहां तक कि उनके पैरों द्वारा उत्पन्न ध्वनि भी एक साथ होती है। यह सब बहुत नियमित ढंग से होता है। ठीक इसी प्रकार प्रकाश के स्रोत से असंख्य तरंगें एक साथ बाहर निकलती हैं। परन्तु ये तरंगें एक-दूसरे से भिन्न रूपों में प्रसारित होती हैं और इनके व्यवहार में एकता नहीं होती। प्रकाश के ऐसे स्रोत को असम्बद्ध स्रोत (incoherent source) कहते हैं। लेसर प्रकाश का एक ऐसा स्रोत है जिससे सभी तरंगें एक ही रूप में निकलती हैं। सभी तरंगों के प्रसारित होने का ढंग एक-सा होता है। लेसर का यह गुण बहुत उपयोगी है, और ऐसा होने से प्रकाश-विज्ञान की बहुत-सी समस्याओं का समाधान सरलता से हो जाता है। यह उल्लेख्य है कि लेसर-रश्मियों की तीव्रता भी बहुत अधिक होती है।

प्रकाश का वर्णपट यदि हम सूक्ष्मता से देखें, तो पायेंगे कि वह कई रंगों से मिलकर बना है। प्रत्येक रंग को एक तरंग-लम्बाई द्वारा सूचित किया जाता है। प्रकाश के साधारण स्रोत केवल एक ही रंग को प्रसारित नहीं करते हैं। उनसे निकला हुआ प्रकाश कई तरंगों से मिलकर बना होता है। परन्तु लेसर-रश्मियां एक ही तरंग की होती हैं। ऐसे प्रकाश को एक-वर्णी (monochromatic) कहते हैं।

टार्च से निकला हुआ प्रकाश यदि किसी दीवार पर डालें, तो हम देखेंगे कि उस पर प्रकाश का एक बड़ा-सा वृत्त बन गया है। यह दीवार जितनी ही दूर होती जाती है, प्रकाशित भाग का क्षेत्रफल उतना ही बढ़ता जाता है। ऐसे प्रकाश के स्रोतों से जब प्रकाश बाहर निकलता है तब वह उद्गम पर एक बड़ा कोण बनाता है। इसलिए जितनी अधिक दूरी तक प्रकाश जाता है, उसका प्रकाशित करने का घेरा उतना ही बड़ा होता जाता है। इस प्रकार प्रकाश की तीव्रता कम

(क) इलेक्ट्रानि नलिका प्रारम्भ करने से पूर्व परमाणु अपनी मूल अवस्था में रहते हैं

(ख) प्रकाश (काले तीर) परमाणुओं को उत्तेजित अवस्था में ला देता है। ये परमाणु काले बिन्दुओं द्वारा दिखाये गये हैं

(ग) परमाणु अपनी पूर्वावस्था में आ जाते हैं और लेसर-रश्मियों (रंगीन तीर) को जन्म देते हैं।

(घ) इस प्रकार उत्पन्न हुई लेसर-रश्मियां अन्य परमाणुओं से टकराकर और अधिक रश्मियां उत्पन्न करती हैं

(च) ये रश्मियां रुबी छड़ के किनारों से परावर्तित होकर समानान्तर रेखाओं में चलने लगती हैं

(छ) बहुत अधिक मात्रा हो जाने पर ये छड़ के एक किनारे से निकल जाती हैं



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

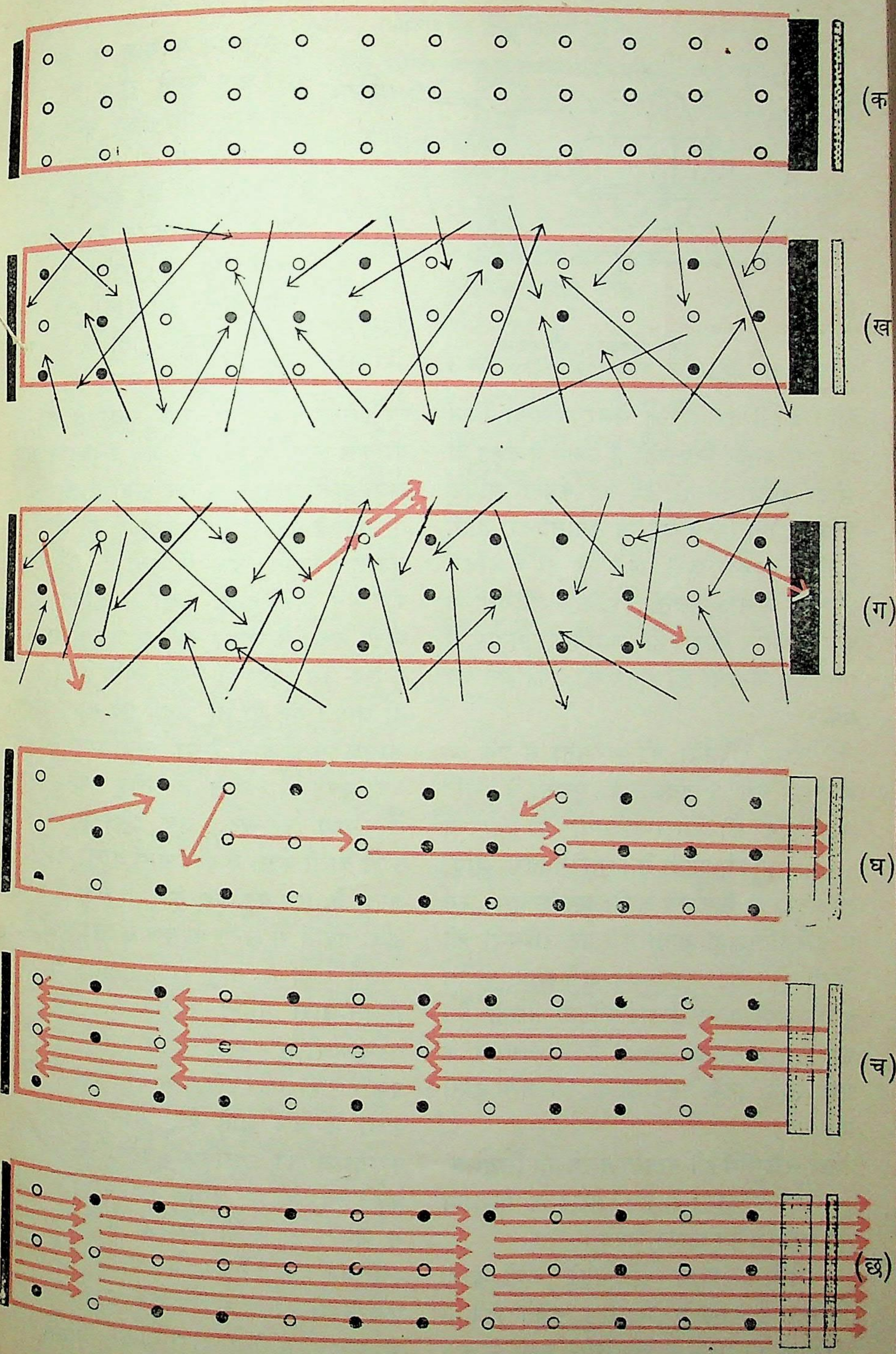




CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

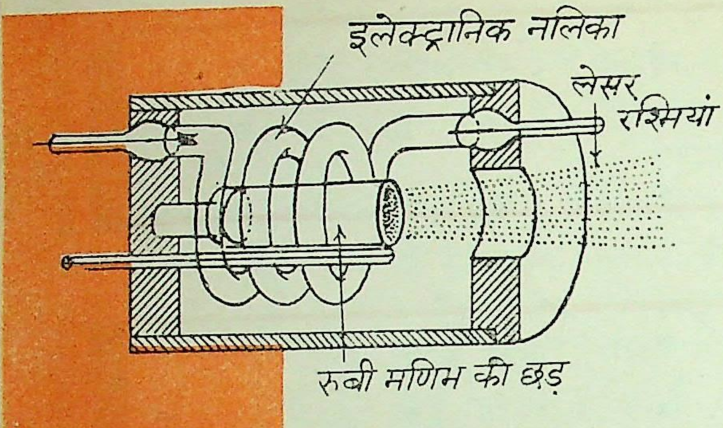


लेसर उपकरण की रचना

होती जाती है। परन्तु लेसर-रश्मियां जिस स्रोत से बाहर निकलती हैं उससे वे बहुत ही छोटा कोण बनाती हैं। यह कहना अधिक उचित होगा कि वे लगभग समानान्तर होती हैं। इस प्रकार दूरी बढ़ने पर भी वे अधिक क्षेत्रफल में नहीं फैलती हैं। लेसर-रश्मियों के इन्हीं गुणों के कारण ही वैज्ञानिक इतिहास में सर्वप्रथम चन्द्रमा की सतह को प्रकाशित कर सके।

लेसर-रश्मियों को सरलता से एक रंग से दूसरे रंग में बदला जा सकता है। यदि लाल रंग की लेसर-रश्मियों को क्वार्ट्ज (quartz) की पट्टी से प्रसारित किया जाय, तो पट्टी से निकलने वाला प्रकाश दूसरे रंग में परिवर्तित हो जाता है। इन रश्मियों को किसी भी दूसरे तरंग के प्रकाश के साथ मिश्रित करके नयी तरंग उत्पन्न की जा सकती है। इस गुण का बड़ा महत्त्व है और समय के साथ-साथ इनके उपयोगों का भी जन्म होता जायगा।

**लेसर-रश्मियों को उत्पन्न करने का सिद्धान्त**

इन पंक्तियों में हम लेसर के सिद्धान्त को समझने का प्रयत्न करेंगे।

प्रत्येक पदार्थ छोटे-छोटे कणों द्वारा निर्मित है, जिन्हें परमाणु कहते हैं। ये परमाणु भी बहुत से छोटे-छोटे कणों से बने होते हैं। इनमें प्रमुख हैं इलेक्ट्रान। ये इलेक्ट्रान परमाणु के केन्द्र के चारों ओर घूमते रहते हैं—ठीक उसी तरह जिस तरह पृथ्वी और अन्य उपग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं। इलेक्ट्रानों की केन्द्र के चारों ओर परिक्रमा करने की विभिन्न कक्षाएं होती हैं। प्रत्येक कक्षा में घूमने वाले इलेक्ट्रानों की एक निश्चित् ऊर्जा होती है। एक कक्षा से दूसरी कक्षा में जाने पर इलेक्ट्रान या तो कुछ ऊर्जा दे देते हैं या कुछ ऊर्जा ले लेते हैं। जब इलेक्ट्रान कम ऊर्जा वाली कक्षा से अधिक ऊर्जा वाली कक्षा में जाता है तब वह दोनों कक्षाओं की ऊर्जा के अन्तर के बराबर ऊर्जा ले लेता है। इलेक्ट्रान का कम ऊर्जा वाली कक्षा से अधिक ऊर्जा वाली कक्षा में जाना तभी सम्भव हो सकता है जब उसे बाहर से किसी विधि द्वारा ऊर्जा दी जाय। यह या तो पदार्थ को गरम करके सम्पन्न किया जाता है या उसके द्वारा विद्युत् बहा करके या बहुत ही तीव्र प्रकाश-स्रोत के मध्य रखकर। जब इलेक्ट्रान अधिक ऊर्जा वाली कक्षा से कम ऊर्जा वाली कक्षा में आता है, तब वह कुछ ऊर्जा दे देता है। यह ऊर्जा पदार्थ से तरंग के रूप में निकलती है। विद्युत् बल्ब के तन्तु (filament) में जब विद्युत्-धारा बहाते हैं तब वह पदार्थ के परमाणुओं को ऊर्जा प्रदान करती है। इस प्रकार ऊर्जा लेकर इलेक्ट्रान अधिक ऊर्जा वाली कक्षा में चले जाते हैं। ऐसी अवस्था के परमाणुओं को 'उत्तेजित-अवस्था' के परमाणु कहते हैं। इलेक्ट्रान अधिक ऊर्जा वाली कक्षाओं से कम ऊर्जा वाली कक्षाओं में बहुत शीघ्र (लगभग $१०^{-८}$ सेकण्ड में) आ जाते हैं और फलस्वरूप कुछ ऊर्जा प्रकाश के रूप में प्रसारित करते हैं। इस क्रिया द्वारा ही हमें विद्युत् बल्ब





CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से प्रकाश मिलता है। यह प्रकाश सभी तरंगों द्वारा निर्मित होता है। इन तरंगों की लम्बाई एक-सी नहीं होती। इनमें किसी प्रकार की एकता भी नहीं होती। प्रकाश के ऐसे स्रोत को असम्बद्ध स्रोत कहते हैं।

लेसर की विधि से प्रकाश को नियन्त्रित रूप में उत्पन्न किया जाता है। रुबी पदार्थ की छड़ बहुत ही तीव्र प्रकाश देने वाले स्रोत के मध्य रखी जाती है। तीव्र प्रकाश की ऊर्जा लेकर इलेक्ट्रान अधिक ऊर्जा वाली कक्षाओं में चले जाते हैं। इलेक्ट्रान अधिक ऊर्जा वाली कक्षाओं में बहुत कम समय के लिए रुकते हैं। यह समय लगभग $१०^{-८}$ सेकण्ड का होता है। इस अवधि में परमाणु फिर अपनी पूर्वावस्था में लौट आता है और प्रकाश की एक तरंग प्रसारित करता है। यदि इलेक्ट्रान को पूर्व कक्षा में पहुंचने से पहले ही प्रकाश द्वारा इतनी ऊर्जा दे दी जाय जो वह पूर्वावस्था में आने पर प्रसारित करता है, तो प्रकाश की दो तरंगें निकलती हैं। ये तरंगें हर दृष्टि से एक-दूसरे के समान होती हैं। इस क्रिया को उद्दीपित उत्सर्जन (stimulated emission) कहते हैं। इस प्रकार उत्पन्न हुई तरंगों को लेसर-रश्मियां कहते हैं।

ऐसी तरंगों को जो सभी रूपों में एक-दूसरे के समान होती हैं, काफी मात्रा में पाने के लिए रुबी पदार्थ की छड़ के दोनों किनारे समतल और पालिश कर दिये जाते हैं। प्रारम्भ में उत्पन्न हुई लेसर-रश्मियां किनारों से परावर्तित होती हैं और परमाणुओं से टकराकर नयी तरंगों को जन्म देती हैं। यह क्रिया बार-बार होती है और रुबी की छड़ के भीतर असंख्य समरूप तरंगें दोनों किनारों से परावर्तित होने लगती हैं। अन्त में जब लेसर-रश्मियों की मात्रा काफी हो जाती है, उन्हें अर्धपारदर्शक सतह से बाहर की ओर निकल जाने दिया जाता है। इस प्रकार लेसर-रश्मियों की एक स्पन्द (pulse) मिल जाती है।

**सेना में लेसर-रश्मियों का उपयोग**

सेना के कार्यों के लिए लेसर-रश्मियों को अनेक प्रकार से उपयोग में लाया जा सकता है। दुश्मन के विभिन्न क्षेत्रों की सही-सही दूरी निकालने के लिए लेसर-रश्मियों को उपयोग में लाने वाला एक दूरीमापी बनाया गया है। इसकी सहायता से दिन में ३,००० मीटर और रात में १०,००० मीटर की दूरी ५ मीटर तक सही-सही निकाली जा सकती है। अमरीका की हृजेस कम्पनी ने ऐसा ही एक दूरीमापी बनाया है जिसका नाम है कोलिडार। दूरी निकालने के लिए रेडियो तरंगों का भी उपयोग होता है। इस प्रकार के दूरीमापी के लिए बहुत बड़े एण्टिना (antenna) की आवश्यकता होती है। परन्तु लेसर-रश्मियों को उपयोग में लाने वाले दूरीमापी के लिए बहुत छोटा एण्टिना काम दे जाता है।

लेसर-रश्मियों का उपयोग उपग्रहों (satellites) के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। इनकी सहायता से वे धरती के

**तीव्र प्रकाश की ऊर्जा लेकर इलेक्ट्रान अधिक ऊर्जा वाली कक्षाओं में चले जाते हैं**

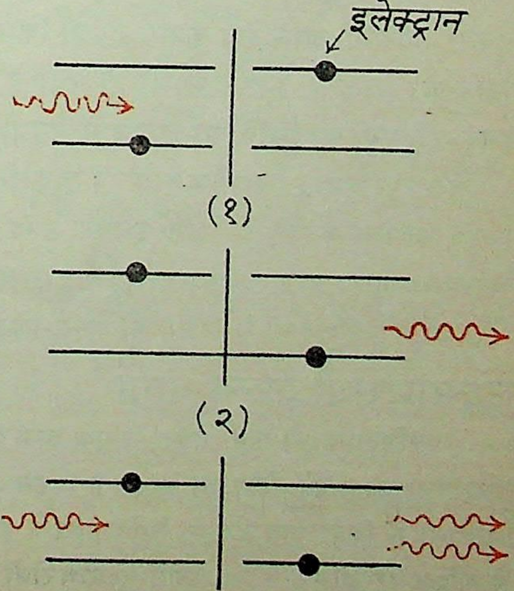




CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभिन्न स्थानों को पहचान सकते हैं। लेसर-रश्मियों की ऐसी तरंगें भी उत्पन्न की जा सकती हैं जिन्हें अवरक्त रश्मियां कहते हैं। इन रश्मियों की सहायता से रात में भी दुश्मनों को देखा जा सकता है। लेसर-रश्मियों द्वारा लड़ाई के मैदान में दुश्मनों की दिशा को बहुत सही-सही ज्ञात किया जा सकता है।

**स्पात की पट्टी में छेद कर देने वाली रश्मियां**

लेसर-रश्मियों की ऊर्जा एक छोटे से घेरे में प्रसारित होती है, इस कारण इसमें अत्यधिक शक्ति होती है। इसके एक बड़े स्पन्द के एक वर्ग सेण्टीमीटर क्षेत्रफल में ५० रकोड़ वाट की शक्ति छिपी रहती है। यदि इस सारी शक्ति को लेंस द्वारा एक मिलीमीटर के क्षेत्रफल में घनीभूत किया जाय, तो इन रश्मियों की तीव्रता $१०^{१५}$ वाट प्रति वर्ग सेण्टीमीटर होगी। इतनी अधिक शक्ति एवं तीव्रता के आगे कौन-सा ऐसा पदार्थ है जो पिघल नहीं जायेगा? तभी तो ये रश्मियां कुछ क्षणों में स्पात की मोटी पट्टियों में भी छेद कर देती हैं। यह सारी शक्ति बहुत ही कम समय के लिए लगती है, अतः ताप एक ही स्थान पर संघनित रहता है। वह पदार्थ में प्रसारित नहीं होने पाता। इन गुणों के कारण लेसर-रश्मियों का वेल्डिंग (welding) में उपयोग करते हैं। इनका उपयोग आज छेद करने अथवा किसी प्रकार का आकार काटने में भी हो रहा है।

**लेसर-रश्मियों का चिकित्सा-शास्त्र में उपयोग**

लेसर-रश्मियां स्थानीय ताप एवं विद्युतीय प्रभाव उत्पन्न करती हैं। अतः इनका उपयोग चिकित्सा-शास्त्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। लेसर-रश्मियों की सहायता से नेत्रों की शल्य-क्रिया की जा सकती है। यदि रेटिना का कोई भाग अलग हो गया हो, तो उसे लेसर-रश्मियों से जोड़ा जा सकता है। केवल इन रश्मियों का एक स्पन्द ही कुछ क्षणों में यह कार्य कर देता है। इस प्रकार की शल्य-क्रिया के दो लाभ हैं— एक तो यह कि रेटिना का रोगी भाग किसी दूसरे स्थान तक हिलने से पहले ही जुड़ जाता है और दूसरा यह कि ताप पूरी आंख में फैलने नहीं पाता। इनके उपयोग के समय रोगी को मूर्छित नहीं करना पड़ता है।

**संचार व्यवस्था में लेसर-रश्मियों का उपयोग**

संचार व्यवस्था के लिए लेसर-रश्मियों का बहुत महत्त्वपूर्ण उपयोग हो सकता है। इनकी सहायता से एक ही सरणि (channel) में असंख्यों समाचार प्रसारित किये जा सकते हैं। इसका कारण है लेसर रश्मियों की आवृत्ति (frequency)। यह बहुत अधिक होती है। लेसर-रश्मियों की एक अंशु (beam) सारे संसार की रेडियो और टेलीविजन सरणियों को ले जा सकती है। परन्तु ये रश्मियां बरसात के मौसम अथवा कोहरे वाले मौसम में अधिक दूर तक प्रसारित नहीं हो पातीं। अतः इन्हें प्रकाश नलिकाओं द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने का विचार है।

लेसर-रश्मियों के अनेक उपयोगों के कारण ही इन पर आज सारी दुनिया में खोज हो रही है। शायद ही कोई माह ऐसा होता है जिसमें इनके बारे में नयी घोषणा नहीं की जाती है। विश्वास है, समय यह सिद्ध कर देगा कि लेसर का आविष्कार प्रकृति को चुनौती है, कि उसके गूढ़ से गूढ़ रहस्य मनुष्य ढूंढ़ लेगा।

## सूक्ष्माणुरोधी शल्य धागा

**लेनिनग्राद की फर्म 'सेबेर' ने एक शल्य धागा तैयार किया है जिसकी सहायता से सूक्ष्माणुओं [illegible] मारा तथा प्रदाह को रोका जा सकता है। इस धागे का प्रयोग हृदय, उदर तथा वक्षांगों की शल्य चिकित्सा में किया गया। शल्य चिकित्सकों ने इसकी बहुत सराहना की। इस धागे का रेशा पोलिवि[illegible] अल्कोहल पर आधारित है। इसमें सूक्ष्माणुरोधी क्रिया उपस्थित रहती है।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

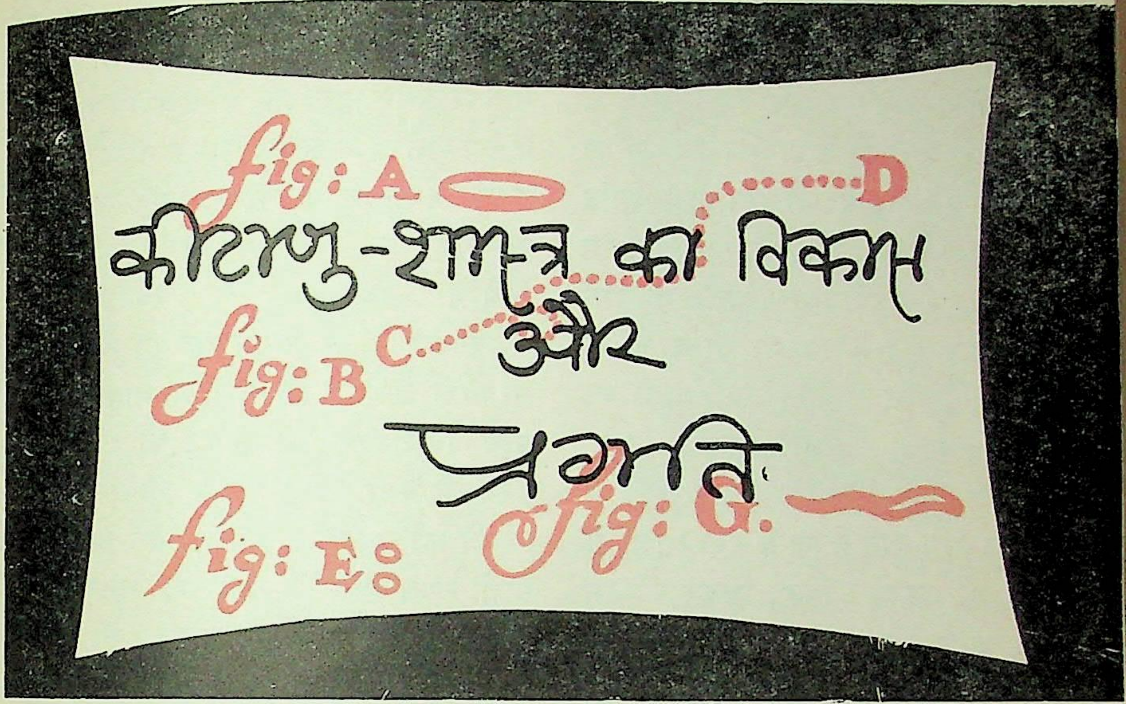


**डा. हर्ष प्रियदर्शी**

हम जिस हवा में सांस लेते हैं, अपनी जीवन रक्षा के लिए जिस जल को पीते हैं, उस हवा और जल में असंख्य क्षुद्र प्राणी विद्यमान हैं। ये प्राणी प्रकृति के गोपनीय तथ्यों में से एक हैं। इन क्षुद्र प्राणियों को कीटाणु कहते हैं। ये कीटाणु इतने सूक्ष्म होते हैं कि इन्हें सूई की नोंक पर सैकड़ों की संख्या में रखा जा सकता है। नंगी आंखों से इन्हें कदापि नहीं देखा जा सकता।

मानव-जन्म से करोड़ों वर्ष पूर्व हमारी धरती पर इन कीटाणुओं का जन्म हुआ था। सत्य तो यह है कि पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति इन्हीं कीटाणुओं से प्रारम्भ हुई है। अभी हाल में आस्ट्रेलिया के प्रख्यात कीटाणु-शास्त्रियों ने इनकी उम्र आंकी है। उनके अनुसार इन कीटाणुओं का जन्म २,७०,००,००,००० वर्ष पूर्व हो चुका था। इन कीटाणु-शास्त्रियों ने अपने शोध-परिणाम को पूर्वी पर्थ की सोने की खदानों में मिले कीटाणुओं के चिह्नों पर आधारित किया है। उनका शोध परिणाम चमत्कार-जैसा है।

मानव-समाज के उत्थान और विनाश के इतिहास में कीटाणुओं का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। कीटाणुओं के अस्तित्व के आविष्कार की कथा आधुनिक विज्ञान के उत्थान और उत्कर्ष की कथा है। इन क्षुद्र प्राणियों की सम्भावना तो मानव इतिहास में आज से शताब्दियों पूर्व स्वीकारी गयी थी, किन्तु इनका अवलोकन प्रथम बार १६७५ में हुआ था।

आज से लगभग चार शताब्दी पूर्व इटली के चिकित्सा वैज्ञानिक गीरोलैमो फ्रैकेस्ट्रो ने १५४६ में अपनी पुस्तक दीकाजियन में कीटाणुओं के अस्तित्व और विनाशकारी प्रभाव पर सर्वप्रथम प्रकाश डाला था। गीरोलैमो फ्रैकेस्ट्रो के मतानुसार वातावरण में रोगों के बीजाणु होते हैं, जिनका प्रजनन और विभाजन बहुत तेजी से होता है। ये ही रोगों के प्रसार एवं जन्म के कारण होते हैं। पर उसकी इस कल्पना से तात्कालिक वैज्ञानिक सहमत न हो सके और उन्होंने



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकमत हो गीरोलैमो को पागल करार दे दिया। वैज्ञानिकों के ऐसे निर्णय का कारण था सूक्ष्मदर्शी यन्त्र का न होना।

सतरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में यूरोप की धरती परसर्वप्रथम सूक्ष्मदर्शी यन्त्र का प्रादुर्भाव हुआ। इसी युग में ईसाई मठाधीश ऐथनसियस क्रियर ने १६५२ में सर्वप्रथम संयुक्त सूक्ष्मदर्शी यन्त्र का प्रयोग रोग के कारणों को जानने के लिए किया। अपने प्रयोग के परिणामों को उन्होंने एक वक्तव्य में प्रस्तुत किया। क्रियर के अनुसार प्लेग-पीड़ित रोगियों के रक्त में असंख्य क्षुद्र कृमि होते हैं जिन्हें नग्न आंखों से नहीं देखा जा सकता। किन्तु क्रियर की इस खोज से आज के वैज्ञानिक इतिहासकार सहमत नहीं है, क्योंकि संयुक्त सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से किसी भी प्रकार इन कीटाणुओं का अस्तित्व नहीं निश्चित किया जा सकता। विज्ञान के इतिहासकारों के अनुसार क्रियर ने रक्त में उपस्थित रुधिर कणिकाओं और पीप कणिकाओं का अवलोकन किया था जिन्हें वह भ्रमवश कीटाणु समझ बैठा था।

क्रियर तक की कथा कीटाणु कथा के आरम्भिक विकास का चरण है। सही अर्थों में तो कीटाणु कथा का प्रारम्भ लिवानहुक के जन्म और प्रयोगों के साथ होता है।

यूरोप के इतिहास में १५वीं शताब्दी से १८वीं शताब्दी तक का युग धार्मिक रूढ़ियों और अन्धविश्वासों का युग रहा है। इतिहास साक्षी है कि गैलीलियो, कापरनिकस और सरविटस आदि कई महान् वैज्ञानिकों को धार्मिक रूढ़ियों और अन्धविश्वासों के बन्धनों में जकड़कर उस युग ने अमानुषिक यातनाएं दी।

**जादुई आंख और लिवानहुक**

रूढ़ियों और धार्मिक उपव्धविश्वासों के ऐसे ही अन्धे युग में जब वैज्ञानिक को अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना पड़ता था, ऐण्टोनीवान लिवानहुक का जन्म हुआ था (१६३२)। लिवानहुक हवाई मिलों, नीची गलियों,ऊंची लहरों और सस्य-श्यामला धरती के देश हालैण्ड के डेल्फ्ट नामक नगर में जन्मा था। लिवानहुक का परिवार एक सम्मानित परिवार था। शराब और टोकरियों का निर्माण लिवानहुक का वंशागत धन्धा शैशवकाल में ही लिवानहुक की मां ने एक सरकारी अफसर की स्वप्न-सम्भावनाओं के साथ लिवानहुक को डेल्फ्ट की एक शिक्षा संस्था में भेजा, किन्तु बालक लिवानहुक उन स्वप्नों को महत्त्व न दे सोलह वर्ष की अल्पायु में ही स्कूल छोड़कर स्वावलम्बी बनने डेल्फ्ट के उस छोटे से नगर से अम्सटर्डम की विशाल डच नगरी को प्रस्थान कर गया। अम्सटर्डम की उस विशाल नगरी में लिवानहुक ने सब कुछ बेचने वाली एक दूकान में जीवकोपार्जन के हेतु नौकरी कर ली। यह सब कुछ बेचने वाली दूकान ही लिवानहुक की वैज्ञानिक अनुसन्धानशाला बनी। छह वर्ष तक लिवानहुक डच गृहणियों के शोरशराबों और कभी न खत्म होने वाले हुजूम के बीच अपने इसी विश्वविद्यालय में अटूट साधना में रत रहा। आज के वैज्ञानिकों की तुलना में कितना महान् था वह! अपना सब कुछ, सारा भविष्य होम करके ऐसी जगह वह अध्ययनशील रहा था, जहां आज का वैज्ञानिक एक क्षण भी बैठना नहीं पसन्द करेगा, अध्ययन और प्रयोग की तो बात अलग है।

इक्कीस वर्ष की आयु में हालैण्ड के उस महानगर अम्सटर्डम से पुनः लिवानहुक ने प्रस्थान किया अपनी जन्मनगरी डेल्फ्ट को। डेल्फ्ट पहुंचकर लिवानहुक ने स्वयं सब कुछ बेचने वाली एक दूकान खोली। लिवानहुक की इस दूकान में सूखी मछलियों से नमक लगे सूखे गोस्त और सूई से लेकर खाने की प्लेटें तक हर वस्तु बिकती थी। बीस वर्षों तक लिवानहुक


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी इस प्रयोगशाला को चलाता रहा—हुजूम और शोर-शराबों के बीच। उसका अध्ययन गतिशील रहा।

अध्ययन के इन्हीं दिनों में लिवानहुक को एक सत्य की प्राप्ति हुई—तालों द्वारा उन वस्तुओं को अधिक बड़े रूप में देखा जा सकता है जिन्हें नग्न आंखों से देखना लगभग असम्भव होता है। उन दिनों के हालैण्ड में तालों की बिक्री एक साधारण बात थी। कितने ही ताल बनाने वाले कारीगर शीशों को घिसा करते थे। लिवानहुक चाहता, तो बाजार से इन तालों को सरलता से प्राप्त कर सकता था। लेकिन उसकी डगर तो कुछ और ही थी; लिवानहुक सीधी राह न चल पाया। प्रकृति और स्वभाव से सन्देहशील होने के कारण अच्छे से अच्छे कारीगरों द्वारा बनाये तालों पर भी उसे सन्देह रहता था कि ये ताल उस स्तर के नहीं बन पाये हैं जिनसे उन वस्तुओं का पर्यवेक्षण सम्भव होगा जो नग्न आंखों के लिए अदृश्य हैं। लिवानहुक के मन में इसी सन्देहात्मक प्रवृत्ति ने एक ऐसी भावना को जन्म दिया जिससे प्रेरित हो उसने स्वयं ताल प्राप्ति के लिए शीशों के अनगिन टुकड़ों को घिसना प्रारम्भ किया। हालैण्ड के सर्वोत्तम कारीगरों का शिष्यत्व उसने स्वीकारा और इस तरह शीशा घिसने के तथ्यों से वह अवगत हुआ। कीमियागरों के चौखठों पर लिवानहुक धूल फांकता रहा। वर्षों की अनवरत साधना के उपरान्त लिवानहुक ने जो प्राप्त किया वह अद्भुत था। कीमियागरी के वे तमाम धातु निर्माण के नुसखे उसकी मुट्ठियों में कैद हो गये थे। वह सोना, चांदी, तांबा, मालूम नहीं क्या-क्या बनाने में समर्थ हो गया था।

## जादुई आंख और खुदा की करामात

बीस वर्षों तक अपनी कोठरी में धातु, गंध-सुगंधि और शीशों की राशि में कैद लिवानहुक अनवरत साधना में लगा रहा।

लिवानहुक ने एक महान् सत्य का उद्घाटन किया और कीटाणुओं के अनुसन्धान के लिए अमर हो गया

जगत के पहले सूक्ष्मदर्शी यन्त्र की प्राप्ति में वह संलग्न रहा। पास-पड़ोस ने उसे पागल करार दे दिया लेकिन वह सब कुछ होमकर सिर्फ अपनी लक्ष्य-प्राप्ति में लगा रहा। अंगुलियां तपती रहीं, आंखें एकाग्र होती गयीं, और तब एक दिन सहसा ही जादुई आंख मिली।

## लिवानहुक देखता रहा…

शीशे की उस जादुई आंख के नीचे वह देखता रहा…खुदा की करामात…एक ऐसी दुनिया जिसे उससे पहले किसी ने नहीं देखा था। जो कुछ भी उसे मिल सका, वह उसकी जादुई आंख के दायरे में अपनी एक-एक परत खोलता गया। ह्वेल के मांस तन्तु, बैल की आंखें, अनगिन वनस्पतियों की पतली परतें—सभी चीजें उसकी जादुई आंख के दायरे में अपने रहस्य खोलती गयीं। मक्खी का सूक्ष्म मस्तिष्क, उसकी अपनी चमड़ी की गोपनीय परतों का रहस्य लिवानहुक के सम्मुख उद्घाटित होता गया। प्रकृति की असम्भावनाएं सम्भावनाओं में परिवर्तित होती गयीं, और वह 'असम्भव…असम्भव' चीखता रहा। इतना अधिक सन्देहशील था लिवानहुक कि जो कुछ वह देखता, उस पर वह स्वयं विश्वास न



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर पाता। अनगिन बार वह उन्हीं देखी हुई वस्तुओं को देखता, तब कहीं वह प्रयोगों के परिणाम नोट करता। लिवानहुक की मान्यता थी कि सर्वश्रेष्ठ पर्यवेक्षक भी गलती कर सकता है, मात्र इसी लिए परिणाम घोषित करने के पूर्व अनगिन बार पर्यवेक्षण कर लेना चाहिये। तभी तो लिवानहुक कहा करता था, सूक्ष्मदर्शी का पर्यवेक्षक बनना प्रत्येक के लिए सम्भव नहीं है। कौन जानता है कि मैंने अपने जीवन के कितने अमूल्य क्षण जादुई आंख के दायरे में होम कर दिये हैं। लिवानहुक की धारणा थी कि उसके परिणाम किसी साधारण व्यक्ति के लिए नहीं है। ये परिणाम मात्र दार्शनिकों की ही उपलब्धि हो सकते हैं।

**विद्रोह के नये स्वर**

सतरहवीं शताब्दी के मध्य में फ्रांस, इटली, और इंग्लैंड में विद्रोहियों का एक वर्ग रूढ़ियों और परम्पराओं के विरोध में नये स्वरों को जन्म दे रहा था। इन विद्रोहियों ने अरस्तू और सुकरात की तमाम मान्यताओं को अस्वीकार कर दिया था। इनका नारा था कि हम उन तथ्यों को मात्र इसलिए नहीं स्वीकार कर सकते क्योंकि उन्हें सुकरात या अरस्तू ने सत्य माना है। हम सुकरात और अरस्तू के सत्यों को प्रयोगों की कसौटी पर कसेंगे। यदि वे तथ्य खरे उतरे, तो हम उन्हें सहर्ष स्वीकार करेंगे, अन्यथा कहेंगे कि सुकरात गलत था, अरस्तू बेबुनियाद था।

ऐसे ही विद्रोहियों के एक वर्ग ने इंग्लैंड में एक संस्था की स्थापना की थी। इस संस्था के सदस्यों ने संस्था का नाम अदृश्य शिक्षा संस्थान रखा था। इस अदृश्य शिक्षा संस्थान ने आधुनिक रसायन के जन्मदाता राबर्ट बायल और महान् भौतिक-शास्त्री एवं गणितज्ञ आइजक न्यूटन-जैसी युगान्तरकारी प्रतिभाओं को जन्म दिया था। चार्ल्स द्वितीय के सत्तारूढ़ होने पर यही शिक्षा संस्थान रायल सोसायटी आफ इंगलैण्ड का प्रेरक बना। रायल सोसायटी आफ इंगलैंड की गणना विश्व की सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक संस्थाओं में आज भी की जाती है। सारी दुनिया के वैज्ञानिक इसकी सदस्यता को गर्व की वस्तु मानते हैं। यह सोसायटी सम्पूर्ण विश्व के महानतम वैज्ञानिकों से अपना सम्पर्क स्थापित करती थी और उनके परिणामों की सत्यता और असत्यता की जांच करती थी। रायल सोसायटी का एक प्रतिनिधि रिगनायर दी ग्राफ डेल्फ्ट के उस छोटे से नगर में रहता था जहां लिवानहुक अपनी जादुई आंख के दायरे में प्रकृति के गोपनीय तथ्यों की एक-एक परत खोल रहा था।

शंकालु लिवानहुक जिसे पूरा डेल्फ्ट पागल समझता था, रिगनायर दी ग्राफ के लिए कौतुक और विस्मय का कारण बन गया था। लिवानहुक के सूक्ष्मदर्शी किसी व्यक्ति के लिए नहीं थे, किन्तु मालूम नहीं शंकालु लिवानहुक ने क्यों और कैसे रिगनायर दी ग्राफ को अपने इन यन्त्रों को देखने की आज्ञा दे दी थी। रिगनायर शायद उसकी जादुई आंखों का प्रथम दर्शक था। रिगनायर ने जो कुछ कौतुक और विस्मय लिवानहुक की जादुई आंख में से देखा था उससे वह अवाक् हो गया था। रिगनायर दी ग्राफ ने स्वयं जीवशास्त्र-सम्बन्धी कई महत्त्वपूर्ण शोध किये थे, किन्तु लिवानहुक के आविष्कार को साकार रूप में देखने के उपरान्त वह मात्र इतना ही सोच पाया था कि उसके तमाम मौलिक शोध लिवानहुक के इस एक शोध के आगे नगण्य हैं। तब एक दिन रिगनायर डी ग्राफ ने रायल सोसायटी के सम्मानित सदस्यों को लिवानहुक के इस युगान्तरकारी महान् शोध की सूचना दी थी। अपने पत्र में उसने रायल सोसायटी के सदस्यों से प्रार्थना की थी कि वे लिवानहुक से स्वयं उसके इस



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्वपूर्ण शोध के विषय में पत्र-व्यवहार करें।

**एक महान उपलब्धि**

रायल सोसायटी की प्रार्थना पर लिवानहुक ने इंग्लैण्ड को पहला पत्र लिखा। इस पत्र में साधारण डच भाषा में लिवानहुक ने अपने उन तमाम आविष्कारों के विषय का विशद् वर्णन किया था। रायल सोसायटी के प्रतिभासम्पन्न सदस्यगण लिवानहुक के वर्णनों से विस्मित हो उठे। संस्था के सम्मानित मन्त्री ने लिवानहुक को सदस्यों का धन्यवाद और अभिनन्दन प्रेषित किया। इस प्रकार लिवानहुक के आविष्कारों के प्रथम साक्षी रायल सोसायटी के सदस्य हुए।

वर्ष बीतते गये और लिवानहुक की निगाहें तेज होती गयीं। सूक्ष्मदर्शी के आविष्कार की चर्चा रंग ले चुकी थी। रायल सोसायटी आफ इंग्लैण्ड से लिवानहुक पत्रों के माध्यम से बराबर अपने महत्त्वपूर्ण शोध परिणामों का आदान-प्रदान करता रहा।

**कालचक्र घूमता गया**

वय की रेखाएं लिवानहुक के चेहरे पर उभरती गयीं। जराकोण गहरे होते गये। और तब एक दिन सहसा घूमता कालचक्र एक ऐसे बिन्दु पर आ गया, जिस बिन्दु से एक नया पथ खुला। वह बिन्दु चिकित्सा-विज्ञान और जीव-शास्त्र के इतिहास में सम्भावनाओं का बिन्दु था। उस बिन्दु पर आकर लिवानहुक अमर हो गया।

पागल और शंकालु लिवानहुक अनेक रहस्य अपनी जादुई आंख के दायरे में खोल देना चाहता था। रहस्यों का यह मोहबन्ध उसके रक्त की हर बूंद में समा चुका था।

**लिवानहुक पागल था···इस कारण कि अपनी जादुई आंख के दायरे में अनेक रहस्यों का वह उद्घाटन करना चाहता था। लिवानहुक की जादुई आंख—**

लिवानहुक को डेल्फ्ट का प्रत्येक प्राणी एक कुलीन और सभ्य पागल समझता था। लेकिन डेल्फ्ट के इस नगर में दो प्राणी ऐसे भी थे जो लिवानहुक को पागल न समझकर महान पर्यवेक्षक मानते थे—एक था रायल सोसायटी का प्रतिनिधि सिगनायर दी ग्राफ और दूसरी उसकी पुत्री मेरिया। पुत्री मेरिया अपने पिता के अटूट साधना में गिरते स्वास्थ्य का कितना ध्यान रखती थी यह महज कल्पना की बात है। मेरिया ने अपना सब कुछ अपने पिता लिवानहुक के लिए अर्पित कर दिया था।

**बारिश का वह दिन**

बारिश का वह दिन लिवानहुक के जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण दिन था। उस दिन लिवानहुक ने सहसा ही वर्षा-जल की एक बूंद को अपनी जादुई आंख के दायरे में रख दिया था। वर्षा जल की यह एक बूंद उसके लिए सागर हो गयी—वह सागर जिसमें असंख्य जीव थे।

लिवानहुक चीख पड़ा, 'असम्भव! असम्भव!' काम करती मेरिया भाग पड़ी उस कोठरी में जहां बूढ़ा लिवानहुक एकाग्रचित जादुई आंख के दायरे में खुदा की करामात देख रहा था। वह बोल उठा, 'देख मेरिया··· मेरी बेटी, देख! प्रभु की यह सत्ता कितनी महान है! देख, ध्यान से देख, इस एक बूंद जल में कितने जीव हैं···वे सारे गतिशील

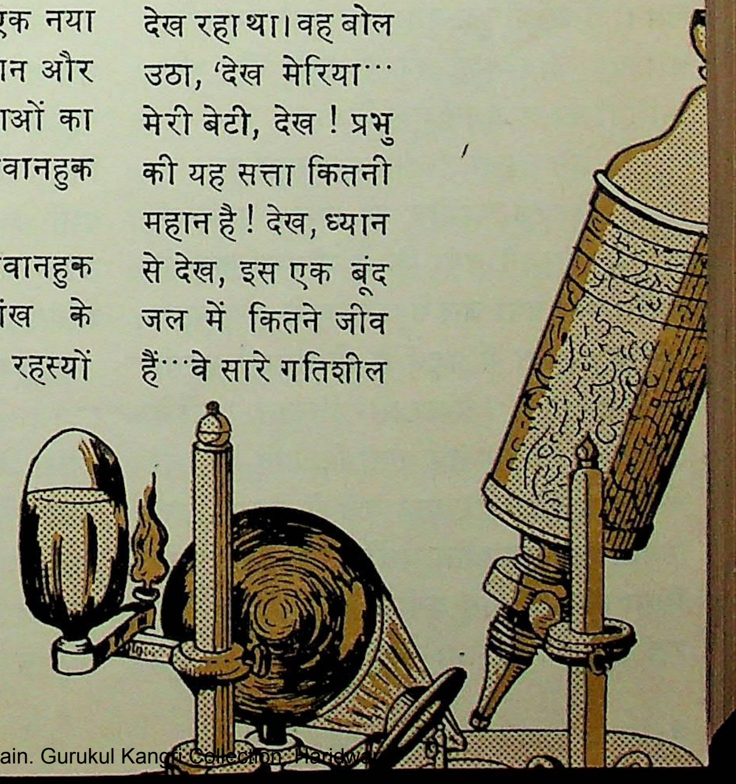



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जीवित हैं। हमारी और तुम्हारी तरह ही गतिशील हैं। नग्न आंखों से हम जो भी सूक्ष्मतम प्राणी देख सकते हैं···उनकी तुलना में ये जीव हजार गुने सूक्ष्म हैं।

'तू जानती है, मेरिया, आज मैंने प्रभुसत्ता के सूक्ष्मतम रहस्य की परत तोड़ दी है। जानती है, मेरिया, आज का दिन मेरे जीवन में कितना महान् है! आज मैंने जो कुछ भी आविष्कृत किया है, वह प्रथम आविष्कार है।'

सचमुच बारिश का वह दिन लिवानहुक के लिए इतना महान् था जिसके लिए मात्र एक वाक्य कहा जा सकता है—वह दिन जीव-शास्त्र और चिकित्सा-शास्त्र की महानतम उपलब्धि का दिन था।

**बूंद और समुद्र**

काश हम महसूस कर पाते उत्तेजना का वह क्षण जिसमें वर्षा-जल की एक बूंद उसके लिए सागर बन गयी थी। शायद वह क्षण उसके जीवन का महानतम क्षण था। उस क्षण में लिवानहुक खुदा की करामत पर मन्त्रमुग्ध हो गया था। एक अजीब-सी सम्मोहित अवस्था में आ गया था वह। पल भर मौन रहा, और तब उसने अपनी सम्पूर्ण चेतना के साथ पुनः-पुनः उन सूक्ष्मतम जीव-धारियों, जीवाणुओं की चेष्टाओं और गति-विधियों का अध्ययन शुरू किया।

लेकिन पहला ही सवाल इतना टेढ़ा था कि लिवानहुक गम्भीर हो गया। पर्यवेक्षण छोड़ वह सोचने लगा कि ये जीवाणु कहां से आये। क्या वर्षा जल में आकाश से साथ-साथ आये हैं, अथवा ये पहले से ही हमारी धरती पर विद्यमान थे? चेष्टा और चिन्तन, दोनों ने उसके सम्मुख एक तर्क रखा कि यदि ये वर्षा जल में आये तो हर बार जल में इनकी उप-स्थिति निश्चित् होनी चाहिये। फिर क्या था! लिवानहुक ने अपने बगीचे में शीशे के जार रख दिये जिनमें वर्षा-जल एकत्र होने लगा। अनगिन बार वह वर्षा-जल की परत को अपनी जादुई आंख के दायरे में तोड़ने लगा, लेकिन वह उन जीवाणुओं को न पा सका।

प्रयोग शुरू हुआ और लिवानहुक डेल्फ्ट के पानी के नमूनों को संचित करने लगा—गन्दी नालियों का जल, खेतों का जल, तालाबों का जल—जहां भी उसे मिला वह ले आया। हर बार उसे जल की विभिन्न किस्मों में मिले असंख्य आकार-प्रकार के जीवाणु—गतिशील और जीवित। प्रत्येक जीवाणु उसके अध्ययन का विषय बना। उन जीवाणुओं के आकार, प्रकार, प्राप्ति स्थान का वह पर्यवेक्षण करता रहा और शोध परिणामों को नोट करता रहा।

इन नये शोध परिणामों की प्रथम चर्चा उसने अपने उस पत्र में की जो उसने रायल सोसायटी के सदस्यों को लिखा था। कुछ सदस्य तो लिवानहुक की चर्चा से सहमत थे और कुछ उसकी सत्यता से असहमत थे। जो असहमत थे वे कहते थे कि लिवानहुक का यह शोध परिणाम नितान्त गलत है कि एक बूंद जल में हालैण्ड की जनसंख्या से भी अधिक जीवाणुओं को रखा जा सकता है। जीवाणुओं की यह कल्पना उस बूढ़े डच निवासी का मात्र दिवास्वप्न है। किन्तु तब तक जो कुछ भी लिवानहुक ने लिखा था वह अक्षरशः सत्य था, इसलिए सदस्यों ने यह निर्णय किया कि वे लिवानहुक से उसके सूक्ष्म-दर्शी के निर्माण का रहस्य पूछकर स्वयं ऐसे उपकरण को जन्म देंगे जिससे उसके तथा-कथित जीवाणुओं को देखा जा सके।

तब रायल सोसायटी के सम्मानित सदस्यों ने डेल्फ्ट के उस वैज्ञानिक को पत्र लिखा कि वह रायल सोसायटी के सदस्यों पर कृपा करे और सूक्ष्मदर्शी यन्त्रों के निर्माण की विधि लिखे जिसके लिए सारे सदस्यगण उसका अत्यन्त आभार मानेंगे।

न चाहते हुए भी लिवानहुक ने उन


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदस्यों को निर्माण की विधि के सूत्र दिये ।

गणित के इन्हीं सूत्रों के आधार पर रायल सोसायटी के सदस्यों ने रावर्ट हुक और निहमाय ग्रियु को सूक्ष्मदर्शी बनाने के लिए नियुक्त किया । १५ नवम्बर १६७७ को रावर्ट हुक ने सूक्ष्मदर्शी को लाकर रायल सोसायटी की गोष्ठी में प्रस्तुत किया और लिवानहुक के उस कथ्य की सत्यता सिद्ध कर दी कि एक बूंद जल में लाख-लाख जीवधारी रहते हैं ।

१५ नवम्बर १६७७ का वह दिन लिवानहुक के जीवन का दूसरा महत्त्वपूर्ण दिन था । उसकी साधनाओं का सत्य इसी दिन सिद्ध हुआ था । रायल सोसायटी ने लिवानहुक को इसी दिन संस्था का सम्मानित सदस्य घोषित किया था । इसी दिन रायल सोसाइटी ने सिल्क का एक चोला उपहारस्वरूप लिवानहुक को भेजा था । उस सिल्क के चोले पर 'मैं आजन्म ईमानदारी से संस्था की सेवा करूंगा' वाक्य लिखा था ।

लिवानहुक अटूट आस्था के साथ मृत्यु-पर्यन्त संस्था के प्रति ईमानदार रहा ।

इंग्लैण्ड की रायल सोसायटी ने डाक्टर मोलिनेक्स को प्रतिनिधि बनाकर इंग्लैण्ड से हालैण्ड के उस नगर डेल्फ्ट में लिवानहुक के सूक्ष्मदर्शी के अध्ययन और पर्यवेक्षण के लिए भेजा । मोलिनेक्स ने लिवानहुक से अत्यधिक दामों पर एक सूक्ष्मदर्शी का सौदा करना चाहा किन्तु लिवानहुक अपनी सम्पत्ति बेचने को तैयार न हुआ । डाक्टर मोलिनेक्स ने जब लिवानहुक की जादुई आंख में अपनी दृष्टि केन्द्रित की, तो वह चीख पड़ा, 'तुम्हारा यन्त्र अद्वितीय है, लिवानहुक ! इंग्लैण्ड तो क्या पूरे यूरोप में इस यन्त्र के समकक्ष यन्त्र नहीं है ।'

और प्रत्युत्तर में लिवानहुक ने मात्र इतना ही कहा था, 'यह तो आपकी महानता है, महोदय । मैंने तो अपनी साधना की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि आपके समक्ष रख दी ।'

**आखिरी पन्ने**

कालचक्र चलता गया और लिवानहुक की जादुई आंख की चर्चा सम्पूर्ण यूरोप में होने लगी । चर्चा इतनी प्रबल हुई कि रूस के महान् सम्राट पीटर और इंग्लैण्ड की मलिका डेल्फ्ट के उस छोटे नगर में सैकड़ों मील का सफर करके मात्र लिवानहुक की जादुई आंख से खुदा की करामात देखने आये ।

दिग्व्यापी प्रशंसा भी लिवानहुक की उस गतिशीलता को न जीत सकी । एक के बाद एक लिवानहुक अपनी जादुई आंख के दायरे में प्रकृति के रहस्यों की परतें तोड़ता गया ।

लिवानहुक ने जीवन के अन्तिम दिनों में भी जीवाणुओं के विषय में कई महत्त्वपूर्ण शोध किये थे । उन महत्त्वपूर्ण शोधों में जीवाणुओं को उसने सर्वव्यापी सिद्ध किया था । जीवाणु अधिक ताप में जीवित नहीं रह सकते, यह शोध लिवानहुक ही ने की थी ।

नब्बे वर्ष की अवस्था में १७२३ में लिवानहुक का देहान्त हो गया । मृत्यु के अन्तिम क्षणों में लिवानहुक ने रायल सोसायटी के नाम आखिरी पत्र अपने मित्र हुगवेलियट से लिखवाया था । उस पत्र में हुगवेलियट ने उसकी ओर से लिखा था : 'सम्मानित महाशयों, अपने मित्र और महान् पर्यवेक्षक लिवानहुक की ओर से मैं आपको यह सन्देश दे रहा हूं कि लिवानहुक ने सम्पूर्ण आस्था और चेतना के साथ अपने वायदे को जीवन की अन्तिम सांसों तक निभाया…।'

विज्ञान के इतिहास के एक ज्वलन्त पृष्ठ की समाप्ति हुई । लिवानहुक की मृत्यु पर सारा यूरोप शोक-सन्तप्त हो गया था । उस दिन दुनिया के तमाम जीव-शास्त्रियों ने एक मत होकर सोचा था, अब कीटाणु कथा का अन्त हो गया, किन्तु इटली के वैज्ञानिक स्पेलेंन्जनी ने वह परम्परा पुनः कायम की । (क्रमशः)





CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


# ENGLISH WORK BOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded.*
- An interesting technique is used to teach the young pupil how to write sentences correctly. He learns by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even a slow child is sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The Work Books are graded and are suitable for use in middle and high schools.

**Book I......Price : Re. 0·80**
**Book II......Price : Re. 1·00**
**Book III......Price : Re. 1·20**

*For further enquiries please write to :*

**SRI RAM MEHRA & Co.**
EDUCATIONAL PUBLISHERS, AGRA




CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

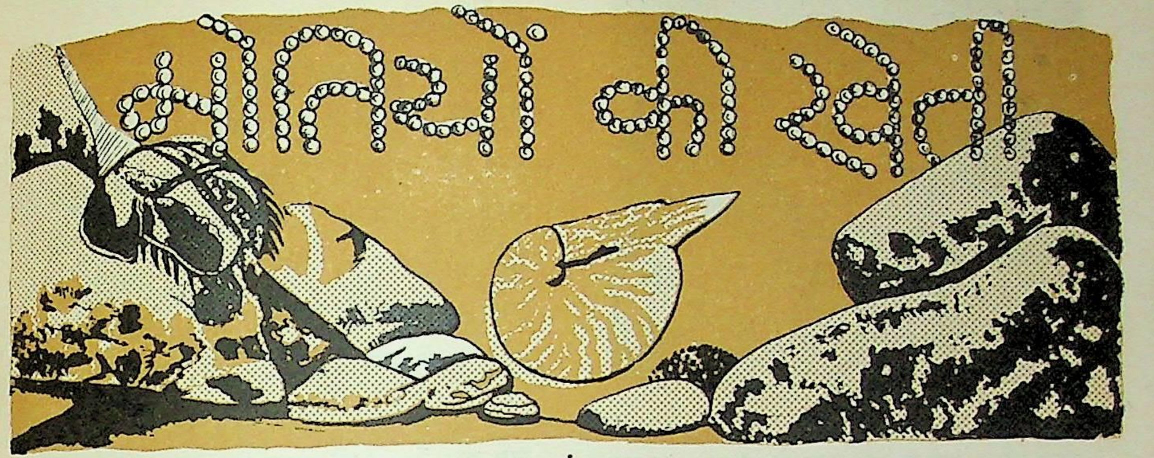


# मोतियों की खेती

रूपनारायण मोहिले, एम. एस-सी.

समुद्र ने मनुष्य को अपनी बहुमूल्य भेंट के रूप में जो अत्यधिक सुन्दर पदार्थ दिया है, वह है मोती। मोती का रंग-रूप वास्तव में अत्यन्त मोहक होता है। झिलमिलाते इन्द्र-धनुष के सात रंगों में लिपटा हुआ गोल-गोल, दूध की तरह सफेद मोती बड़ा ही प्यारा लगता है।

मोती जितना सुन्दर होता है, उतना ही कोमल भी। तनिक-सी असावधानी से इस पर खरोंच के निशान बन जाते हैं। हीरे और अन्य बहुमूल्य पत्थरों की तरह मोती का सौन्दर्य अक्षुण्ण नहीं होता। धूल, रगड़, पसीना, गरमी, नमी आदि से मोती का रंग-रूप बिगड़ जाता है। अतः इसका सौन्दर्य बनाये रखने के लिए बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती है।

साधारणतयः मोती का मूल्य उसके भार के अनुपात में निर्धारित किया जाता है। साथ ही रंग और आकार का भी उसके मूल्यांकन पर प्रभाव पड़ता है। काले रंग के मोती प्रायः बहुत कम मिलते हैं, अतः साधारण दूधिया मोती की अपेक्षा इनका मूल्य कई गुना अधिक होता है। अब तक प्राप्त मोतियों में सबसे बड़े मोती का व्यास दो इंच, परिधि छह इंच तथा भार तीन औंस है।

**मोती का जन्म**

मोती का जन्म सीप के गर्भ में होता है, और यह वहीं धीरे-धीरे पलकर बड़ा होता है। मोती वाली सीप और खाली सीप की केवल ऊपर से देखकर पहचान करना असम्भव है। मोती पाने के लिए हर सीप को खोलकर देखना पड़ता है। इस प्रकार हजारों सीपें खुल जाने के बाद ही कहीं किसी एक सीप में मोती के दर्शन होते हैं।

साधारणतया मोती वाली सीपें समुद्र-तल में ८-२० फेदम (४८-१२० फुट) की गहराई तक मिलती हैं। समुद्र में स्थित द्वीपसमूह के बीच की उथली जलधारा में मोती वाली सीपें अधिक संख्या में प्राप्त होती हैं। समुद्र के ऐसे सभी स्थानों को जहां मोती वाली सीपें मिलती हैं, सम्बन्धित सरकार द्वारा ठेकों पर उठा दिया जाता है।

मोती वाली सीपों के लिए निम्नलिखित स्थान प्रसिद्ध हैं—भारत, श्रीलंका, फारस की खाड़ी और पालीनीशियन द्वीपसमूह के समुद्री किनारे। इसके अतिरिक्त आस्ट्रेलिया के उत्तरी और पश्चिमी समुद्री किनारों पर सुलू आर्चीपेलेगो द्वीपसमूह तथा दक्षिणी कैलिफोर्निया के समुद्री किनारों पर भी अच्छे किस्म के मोती मिलते हैं। दक्षिणी कैलिफोर्निया के किनारों से कभी-कभी बहुमूल्य काले रंग के मोती प्राप्त होते हैं। मीठे पानी की झीलों और स्काटलैण्ड, आयरलैण्ड, जरमनी, रूस



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

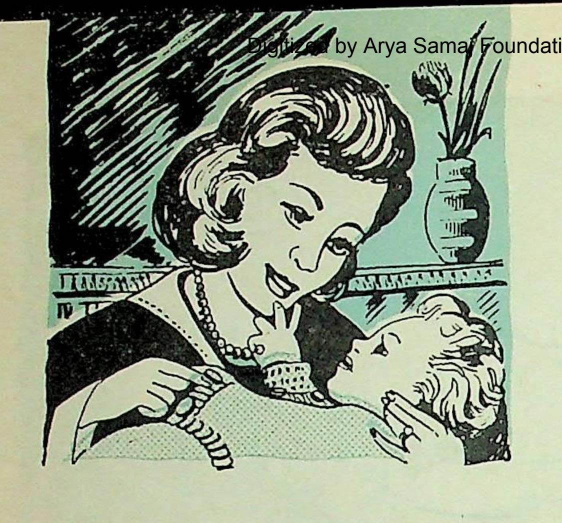

मदर आफ पर्ल से बने हार के मनके और बटन

आदि देशों की कुछ नदियों में भी छोटे आकार के मोती प्राप्त होते हैं। मिसीसिपी और उसकी सहायक नदियों में भी अच्छे और अधिक किस्म के मोती मिल जाते हैं।

**गर्भवती सीपें**

सदियों से बहुमूल्य मोतियों को अपने गर्भ में छिपाये असंख्य सीपें समुद्र तल पर पड़ी विश्राम करती रहती हैं। ये गर्भवती सीपें अन्य खाली सीपें की ही भांति दीख पड़ती हैं। अतः प्रत्येक को खोलकर उसके अन्दर छिपे मोती की खोज की जाती है।

समुद्र तल में सीपों के शिकार के लिए गोता लगाने वाले शिकारियों को भी अपनी जान हथेली पर रखकर ही नीचे पानी में घुसना पड़ता है। समुद्र के विशाल गर्भ में अनेक भीमकाय मछलियां, जैसे ह्वेल, शार्क, टाइगर आदि किसी भी बड़े से बड़े जीव-जन्तु को बिना चबाये ही पूरा का पूरा निगल जाने के लिए चारों ओर चक्कर काटती रहती हैं। इनके अतिरिक्त एक और भयानक समुद्री जन्तु आक्टोपस भी लम्बी-लम्बी रस्सियों की तरह दूर तक फैली अपनी भुजाओं को जलराशि में फैलाये हुए शिकार की तलाश में बैठा रहता है। जब कोई जीव इसकी भुजाओं की पकड़ में आ जाता है, तब उससे छूटकर जीवित निकल जाना असम्भव है।

**सीपें शिकारी के आगमन से बेखबर रहती हैं**

इन सब खतरों के होते हुए भी चतुर एवं साहसी गोताखोर पानी में उतरकर नीचे समुद्र तल को अपने पैरों से रौंदने के लिए पहुंच ही जाते हैं। इस कार्य में स्त्रियां तो पुरुषों से भी अधिक दक्ष और चतुर होती हैं। समुद्री जीव-जन्तुओं से बचने के लिए कुछ गोताखोर अपने साथ नुकीले चाकू ले जाते हैं। परन्तु आधुनिक गोताखोर एक विशेष सूट पहनकर ही नीचे उतरते हैं। इसी सूट के साथ सांस लेने के लिए रबर की एक ट्यूब नाक से जुड़ी रहती है, ताकि गोताखोर जब तक चाहे बिना किसी कष्ट या खतरे के नीचे रह सकता है। इस प्रकार एक ही बार में अधिक से अधिक सीपों का शिकार किया जा सकता है।

समुद्रतल पर सदियों से सुखपूर्वक रहने वाली इन बेचारी सीपों को शिकारियों के आगमन का पता तक नहीं लगता। समुद्र-तल पर खड़े होकर गोताखोर शिकारी नीचे पड़ी एक-एक सीप को उठाकर अपनी पीठ पर बंधी डोलची में रखता जाता है। डोलची जब सीपों से भर जाती है, तब गोताखोर पानी के ऊपर आकर अपने शिकार को नाव में लाद देता है। इस प्रकार शाम को सीपों से लदी नावें किनारे पर आ लगती हैं। यहां इन सीपों को खुले मैदान में दो-एक दिन तक धूप में सूखने के लिए फैला दिया जाता है।

समुद्र तल की शीतलता से निकलकर यहां किनारों पर धूप की गरमी में पड़े रहने के कारण सीपों के अन्दर छिपे घोंघे भुन-भुन-कर मर जाते हैं। इसके बाद सीपों के अन्दर छिपे मोतियों की तलाश का काम शुरू हो जाता है। सूखी हुई सीपों का पानी से धोकर एक स्थान पर ढेर लगा दिया जाता है। अब यहां बहुत से कसाई ढेरों में से एक-एक सीप उठाकर नुकीले चाकू से उनका मुंह खोलकर दोनों पेट चीरकर अलग-अलग करके अन्दर



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छिपे मोती को देखते जाते हैं।

**हजारों-लाखों सीपें और एक मोती**

इस प्रकार हजारों लाखों सीपयों को चीर डालने के बाद ही कहीं किसी एक सीप में कोई एक सुन्दर-सा मोती पड़ा दीख पड़ता है। यही वह बहुमूल्य मोती है, जिसके लिए इतने घोंघों का बलिदान चढ़ा दिया जाता है।

इन्द्रधनुष के झिलमिलाते सात रंगों में लिपटे हुए दूध-जैसे सफेद मनमोहक मोती का जन्म कहां और कैसे होता है, यह बात जानकर हमें सचमुच प्रकृति के अनोखे कार्यों पर महान् आश्चर्य होता है। शत्रुओं से अपनी प्राण-रक्षा करने के लिए प्रकृति ने अपने सभी जीवों को कोई न कोई साधन अवश्य दिया है। एक बहुत छोटा और बहुत कोमल-सा मछली-परिवार का कीड़ा जिसे घोंघा कहते हैं, अपनी प्राण-रक्षा के लिए अपने ऊपर पत्थर की तरह एक कड़े कवच की रचना कर लेता है। रहने के लिए यही उसका घर है और शत्रु से बचने के लिए यही उसका दुर्ग। इसे सीप कहते हैं।

**मदर आफ पर्ल : घोंघे का घर**

घोंघा अपने रहने के लिए जो सीप बनाता है, यद्यपि यह ऊपर से बड़ी खुरदरी, भद्दी और सख्त होती है, परन्तु अन्दर से बहुत चिकनी, मुलायम और सुन्दर दीख पड़ती है। इसे अंगरेजी में मदर आफ पर्ल कहते हैं। यह बटन, चाकू के हैण्डल और सजावट के बहुत से सामान बनाने के काम आती है। इतनी चिकनी दीवारों वाला यह घर घोंघा अपने-आप ही बनाता है। उसके शरीर से एक चिकना तरल पदार्थ निकलता है। यह तरल पदार्थ जमकर कड़ा हो जाता है। इस तरह इसकी तह पर तह जमती जाती है और अन्त में सीप की शक्ल का एक सुन्दर-सा दुर्ग बन जाता है, जिसके अन्दर छिपा घोंघा शत्रुओं की चिन्ताओं से मुक्त होकर सुखपूर्वक जीवन-निर्वाह करता है।

वायु और पानी की आवश्यकता की पूर्ति के लिए घोंघे को कभी-कभी अपने दुर्ग के दोनों कपाट खोलने पड़ते हैं। इसी समय यदि कोई बालू का कण या अन्य कोई छोटा कीड़ा-मकोड़ा सीप के खुले हुए मुंह में घुस जाय, तो सीप शीघ्र ही अपने द्वार बन्द कर लेती है। फिर तो बालू का कण या शत्रु कीड़ा, जो भी अन्दर पहुंच जाता है, वह सदैव के लिए वहीं फंसकर रह जाता है। वह कभी भी बाहर नहीं निकल सकता। घोंघा भी अपने शत्रु की उपस्थिति अपने साथ सहन नहीं कर सकता। अतः उसके सम्पर्क से अपना बचाव करने के लिए घोंघा अपने शरीर से निकलने वाले तरल पदार्थ से उसको चारों तरफ से ढंककर एक दीवार का निर्माण करने में जुट जाता है। तरल पदार्थ की तह पर तह जमती जाती है और कुछ ही समय में वह आक्रमणकारी शत्रु अवैध प्रवेश करने के दण्ड-स्वरूप एक मोटी दीवार की गोल-गोल काल कोठरी में फंसकर वहीं समाप्त हो जाता है।

जब कभी किसी गोताखोर के हाथ पड़कर यह सीप ऊपर किनारे पर आ जाती है और इसको यहां खोला जाता है, तो एक सुन्दर-सा झिलमिलाता हुआ मोती अन्दर पड़ा हुआ

**पानी की सतह से नीचे···समुद्री जन्तुओं से अपनी रक्षा के लिए गोताखोर अपने साथ चाकू ले जाता है।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीखता है। सीप के खुलते ही सूर्य की किरणें इस दूध-जैसे सफेद मोती को इन्द्रधनुष के झिलमिलाते सप्त रंगों के आवरण में ढककर मनुष्य के हाथों में सौंप देती है। बस, इसी समय मोती-जैसे सुन्दर, मनमोहक और कोमल रत्न का जन्म होता है।

**मोतियों की खेती**

मोतियों की खेती! साधारणतयः यह बात पढ़ने और सुनने में बहुत विचित्र-सी लगती है, परन्तु है बिलकुल सत्य। प्राकृतिक ढंग से तो मोती का जन्म समुद्र-तल पर पड़ी किसी सीप के गर्भ में होता है, और यह मोती वहीं गर्भ में पलकर धीरे-धीरे बड़ा होता है। न तो हर सीप में मोती होता है, और न ही बाहर से देखकर मोती वाली और बिना मोती वाली सीप में अन्तर बताया जा सकता है। अतः मोती बहुत कम संख्या में प्राप्त होने के कारण बहुमूल्य माने जाते हैं।

मोती अपनी सुन्दरता, कोमलता और आकार के कारण इतना जनप्रिय हो गया है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप में मोती का उपयोग करने के लिए लालायित रहता है। यदि स्त्रियों को मोती के हार पसन्द हैं, तो पुरुष भी मोती-जड़ी अंगूठी पहनना चाहते हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि इतनी बड़ी संख्या में मोती आयेंगे कहां से? अतः यह आवश्यक हो गया कि किसी न किसी तरह मोती की खेती की जाय।

मोतियों की खेती करने के लिए पेड़-पौधों की तरह मिट्टी की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह कार्य सबसे पहले लगभग तेरहवीं सदी के आसपास पूर्वी देशों में शुरू हुआ। परन्तु पूर्णतः वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर सफलतापूर्वक मोती की खेती करने की सबसे सरल विधि १८९४ में एक जापानी युवक कोकीची मिकीमोतो ने पेटेण्ट करायी।

**सीपों में गर्भाधान की कृत्रिम विधि**

मिकीमोतो की विधि के अनुसार जिसे जापानी विधि भी कहते हैं, पहले किसी अच्छी-सी सीप के एक छोटे से टुकड़े के बहुत छोटे-छोटे कण बना लिये जाते हैं। इन्हें बीज कहते हैं। अब समुद्र तल पर पड़ी एक विशेष जाति 'मेलीग्रीना' की सीपों को गोताखोर ढूंढ़-ढूंढ़कर ऊपर लाते हैं। यहां किनारे पर बड़ी सावधानी के साथ इन सीपों को गर्भाधान कराया जाता है। इसके लिए हर सीप का मुंह खोलकर प्रत्येक में जबरदस्ती एक-एक बीज ठूसकर अन्दर प्रवेश करा दिया जाता है। उसके तुरन्त बाद ही सीप का मुंह बन्द करके फिर इन गर्भवती सीपों को एक डोलची में भरकर गोताखोर समुद्र तल में किसी सुरक्षित स्थान पर छोड़ देते हैं।

कुछ वर्षों के बाद इन्हीं सीपों में अपने-आप मोती पैदा हो जाते हैं। वास्तव में जो कार्य प्राकृतिक रूप से एक-दो सीपों में कभी-कभी अचानक हो जाया करता है, वही कार्य मनुष्य द्वारा असंख्य सीपों में रोज होता है। अतः अपनी जरूरत के अनुसार मोतियों की संख्या प्राप्त हो सकती है। प्राकृतिक और अप्राकृतिक विधियों में केवल इतना ही अन्तर है कि सीप के खुले हुए मुंह में अचानक कोई कण न प्रवेश करके जबरदस्ती प्रवेश कराया जाता है। बाद में फिर मोती का निर्माण दोनों ही विधियों में एक-जैसा होता है। सीप के अन्दर का घोंघा इस बाहर से आये हुए कण को चारों ओर से एक तरह पदार्थ से ढंक देता है जो धीरे-धीरे जमकर मोती का रूप ले लेता है।

अनुभव के आधार पर ऐसा ज्ञात हुआ है कि इन सीपों के अन्दर जबरदस्ती प्रवेश कराते हुए बीजों पर प्रति वर्ष ०.०३ इंच मोटा मोती के पदार्थ का आवरण चढ़ता रहता है। इस गति से एक अच्छा मोती बनने में कई वर्षों का समय लग जाता है।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वैज्ञानिक उपलब्धियां

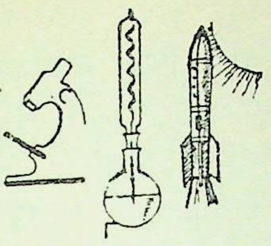

### पोटैशियम सल्फेट के उत्पादन की नयी विधि

साधारण नमक बनाते समय कुछ जल बेकार ही फेंक दिया जाता है। केन्द्रीय नमक और समुद्री अनुसन्धान संस्थान, भावनगर में बिटर्न के उपयोग द्वारा पोटैशियम सल्फेट के उत्पादन की एक नयी विधि विकसित की गयी है। यह उल्लेख्य है कि पोटैशियम सल्फेट एक उपयोगी उर्वरक है। कच्छ के रन में बिटर्नों में मैग्नीशियम सल्फेट भी उपस्थित रहता है। कुछ बिटर्न इससे मुक्त भी रहते हैं। इस विधि से इन दोनों प्रकार के बिटर्नों के मिश्रण को सूर्य की उष्मा द्वारा बाष्पीकृत करके पोटैशियम सल्फेट प्राप्त किया जाता है। प्रतिदिन एक टन पोटैशियम सल्फेट उत्पन्न करने वाले प्रायोगिक संयन्त्र का पूर्ण विवरण तैयार कर लिया गया है। इस संयन्त्र द्वारा ८,००० टन पोटैशियम सल्फेट प्रति वर्ष प्राप्त होगा और लगभग २७ लाख रुपये की विदेशी मुद्रा की बचत होगी।

### बिना रेफ्रीजरेशन के दूध को छह महीने तक रखा जा सकता है

किसी भी प्रकार की जलवायु में बिना रेफ्रीजरेशन का प्रयोग किये दूध को छह महीने तक ताजा रखने के लिए ब्रिटेन के वैज्ञानिकों ने एक नयी विधि का विकास किया है। इस विधि के अन्तर्गत दूध को पहले १००° से. तक गरम करते हैं, इसके पश्चात् इसे शीघ्रता से ठण्डा करते हैं। दीर्घ जीवनकाल वाले इस प्रकार के दूध से उत्पादन के लिए दो संयन्त्र तैयार किये गये हैं। अब इस प्रकार के दूध का बड़े पैमाने पर उत्पादन होने लगा है।

ऐसे दूध के स्वाद में साधारण दूध से कोई भिन्नता नहीं होती।

### गरम पानी से चलने वाला रेफ्रीजरेटर

यू. एस. एस. आर. अकादमी आव साइन्सेज के साइबेरिया विभाग के उष्ण भौतिकी संस्थान में एक ऐसा रेफ्रीजरेटर बनाया गया है जो विद्युत् के स्थान पर गरम पानी से चलता है। इस रेफ्रीजरेटर का सफलतापूर्वक परीक्षण किया जा चुका है और अब उष्मा ट्रांसफारमर के रूप में इसके उपयोग किये जा रहे हैं। इस प्रकार का रेफ्रीजरेटर ऐसे स्थानों पर अत्यधिक उपयोगी प्रमाणित होगा जहां उष्ण जल के स्रोत या धात्वीय संयन्त्र है जिससे उष्ण जल निरन्तर प्राप्त हो सकता है।

### नये किस्म का कैलेण्डर

रूसी संघ के नोनोसिबिर्स्क के लियोनिद साखारोवस्की ने एक नये प्रकार का कैलेण्डर तैयार किया है। सोवियत विज्ञान अकादमी की अखिल संघ ज्योतिर्विज्ञान सोसायटी के केन्द्रीय बोर्ड ने इस कैलेण्डर को स्वीकार कर लिया है तथा यह सिफारिश की है कि रूसी संघ का सार्वजनिक शिक्षा मन्त्रालय इसे बड़े पैमाने पर प्रकाशित करे।

इस कैलेण्डर में एक अंश तालिका है जो चौकोर डिब्बे में घूमती है। इसमें ३,२०० वर्षों की तिथियां जानी जा सकती हैं। इस कैलेण्डर से चन्द्रमा की ३७० वर्षों की गति का भी पता चल सकता है। इसमें एक दिन से अधिक की गलती नहीं होती।

### तन्त्रिका विकार के लिए भारतीय बूटी

संसार भर से एकत्र किये गये विभिन्न पौधों पर आजकल चिकित्सा एवं सगन्ध पौधों के अखिल संघ अनुसन्धान संस्थान के ट्रांसकाकेशियाई प्रयोगात्मक स्टेशन में अनुसन्धान कार्य चल रहा है। हाल ही में भारत की अम्बश्ठा नामक बूटी का पौधा उगाये जाने का सुझाव स्टेशन के स्टाफ ने दिया है। इस पौधे का उपयोग तन्त्रिका विकार की चिकित्सा में लाभदायक होता है।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## पर्वतीय चरागाहों के लिए कृत्रिम वर्षा

तियेनशान पर्वत की चारागाहों में कृत्रिम वर्षा करायी जायेगी। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि यहां जलाभाव रहता है।

सागर-तल से ढाई किलोमीटर ऊंची सुसामिर की वादी को प्रयोगों के लिए चुना गया है। आसानी से ले जाने वाले पानी के छिड़काव के यन्त्रों द्वारा वैज्ञानिक १६० हजार हेक्टर पर्वतीय चरागाह में पानी पहुंचायेंगे। उन्हें आशा है कि इससे तिगुनी घास होगी।

## टेलीफोन द्वारा चित्र तथा लेखन का प्रेषण

किसी भी सामान्य टेलीफोन का जिसका प्रयोग वार्ता करने में किया जाता है, अब चित्र तथा लेखन पहुंचाने में भी किया जा सकता है। पश्चिम जरमनी की एक फर्म ने जो प्रतिलिपि लेखक तैयार किया है, उससे यह कार्य सम्भव हो सका है। अभी तक कागजात

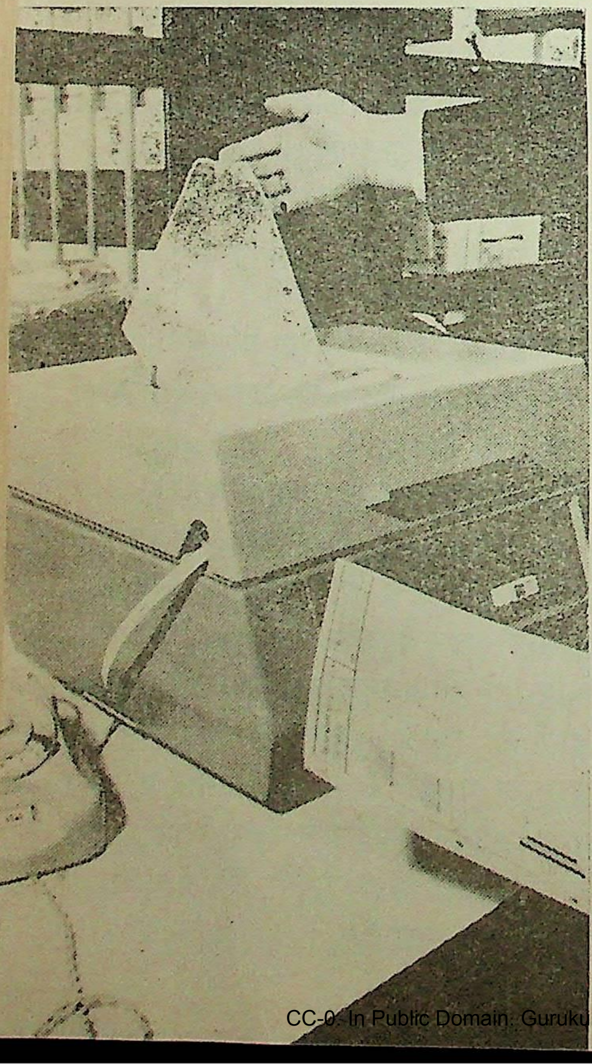

और ड्राइंग भेजने के लिए जिन मशीनों का प्रयोग किया जाता था वे बहुत महंगी थीं। पश्चिम जरमनी की डाक सेवा ने इसे अब स्वीकार किया है कि यह प्रणाली सामान्य टेलीफोन दरों पर प्रयुक्त की जा सकती है। इस प्रतिलिपि लेखक की मूल सम्बद्ध फीस ७५ डालर प्रतिमास बैठती है। इसे विदेशों से वार्ता के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है। पर यह आवश्यक है कि दूसरे सिरे पर भी ऐसा ही यन्त्र हो।

इस प्रतिलिपि लेखक द्वारा ७ × २ इंच आकार की ड्राइंग को भेजने में केवल तीन मिनट का समय लगता है। बड़ी ड्राइंग को भेजने में अधिक समय लगता है। जटिल, कठिन तथा खर्चीली प्रक्रिया जिसमें फोटो प्राप्त करने वाले विशेष कागज की जरूरत पड़ती थी, अब खत्म कर दी गयी है। ग्रहण करने वाले सिरे पर एक स्याही की पेंसिल कागजात की प्रतिलिपि कागज पर करती जाती है। इस कागज को फाड़कर काम में लाया जाता है।

## उड़ता हुआ प्लेटफार्म

अमरीका की पियासे की एयर क्राफ्ट कारपोरेशन ने एक हवाई प्लेटफार्म का निर्माण किया है जो पृथ्वी पर दौड़ सकता है, हवा में उड़ सकता है। इसकी सहायता से फौजी जवानों को किसी भी स्थान पर सरलतापूर्वक उतारा जा सकता है और वह उनके लिए आवश्यक सामग्री पहुंचायी जा सकती है। यह यान देखने में एक जहाजी बेड़े की तरह लगता है जिसमें पायलट के बैठने के स्थान के आगे और पीछे पंखे लगे होते हैं। ये पंखे हेलीकाप्टर के पंखों की भांति क्रिया करते हैं और यान को सीधे ऊपर उठाने में सहायक होते हैं। इस यान की लम्बाई-चौड़ाई और ऊंचाई क्रमशः २४·५ फुट, ९·२ फुट और ५·९ फुट है। इस प्रकार के आधुनिक यान में पांच व्यक्ति एक साथ बैठ सकते हैं।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**राजेन्द्रप्रसाद वार्ष्णेय**, एम. एस-सी.

शायद साधारणत: इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता कि पृथ्वी से पत्थर तथा धातु के टुकड़े लगातार टकराते रहते हैं। कभी-कभी तो ये टुकड़े इतने बड़े होते हैं कि सम्पूर्ण वायुमण्डल को भेदकर पृथ्वी से जा टकराते हैं। ये उल्कापिण्ड (meteorites) कहलाते हैं। अधिक प्रसिद्ध छोटे टुकड़े हैं जो वायुमण्डल के ऊपरी भाग में ९० मील की ऊंचाई पर जल जाते हैं और टूटते हुए तारे-से मालूम देते हैं। ये उल्का कहलाते हैं।

हाल ही में ऐसे कणों का पता लगा है जो इतने छोटे होते हैं कि धीमे होने से पहले इतने गरम नहीं हो पाते हैं कि बाष्पीभूत हो सकें। ये सूक्ष्म धूल के कणों के रूप में जमीन पर गिर पड़ते हैं; ये छोटे उल्कापिण्ड (micro meteorites) कहलाते हैं। इस तरह पृथ्वी पर हजारों टन द्रव्य इकट्ठा होता रहता है। अब हम यह देखेंगे कि यह द्रव्य कहां से आता है और इसे ऊपर के वायुमण्डल का परीक्षण करने के लिए कैसे काम में लाया जा सकता है।

**टूटते हुए तारे** (Shooting Stars)

सर्वप्रथम हम मध्यम नाप के कणों का अध्ययन करेंगे जिन्हें टूटते हुए तारे या उल्का कहते हैं, क्योंकि हम इनके विषय में उल्कापिण्ड की अपेक्षा अधिक जानते हैं। टूटते हुए तारे आकाश में कभी-कभी साफ दिखायी देते हैं, कभी-कभी बहुत संख्या में भी दिखायी देते हैं। लेकिन १८वीं सदी के अन्त में पता लगा कि यह घटना बहुत दूर से पृथ्वी के वायुमण्डल में घुसने वाले कणों के कारण होती है। तब यह महसूस किया गया कि उल्का के कण सूर्य के चारों ओर ग्रहपथ में पृथ्वी की तरह चक्कर लगा रहे हैं।

पृथ्वी १८·५ मील प्रति सेकण्ड की गति से अपने ग्रहपथ में घूमती हुई अपने साथ के कणों को झाड़ती हुई ले जाती है और इस प्रकार एक औसत दिन और रात में पृथ्वी इतना द्रव्य इकट्ठा कर लेती है कि एक द्रष्टा जो आंख से साफ अंधेरे आकाश की तरफ देख रहा है, एक घण्टे में ५ या १० टूटते हुए तारों





CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को देख सकता है। इसकी ठीक संख्या मौसम और रात्रि के समय पर निर्भर करती है। ये उल्काएं जो पूरे वर्ष देखी जा सकती हैं, आकाश में फैली हुई दिखायी पड़ती हैं। ये कदाचनिक उल्का (sporadic meteors) कहलाती हैं। कभी-कभी उल्काओं की संख्या बहुत बढ़ जाती है और यदि उनका मार्ग देखा जाय, तो वे आकाश में एक बिन्दु से फैलती हुई दिखायी देती हैं। ये वर्षोल्का (shower meteors) कहलाती हैं। ये उस समय पैदा होती हैं जब पृथ्वी सूर्य के चारों ओर एक ही ग्रहपथ में घूमने वाले उल्कीय द्रव्य के जमाव के बीच से गुजरती है। साधारणतः वर्षोल्का कुछ रातों में ही खत्म हो जाती है, क्योंकि मलबा (debris) अन्तरिक्ष में करोड़ों मील तक बढ़ सकता है और पृथ्वी १८·५ मील प्रति सेकण्ड की चाल से घूम रही है, इसलिए यह मलवे के प्रवाह में से बहुत जल्दी गुजर जाती है। इसी लिए वर्षोल्का जल्दी ही खत्म हो जाती है। चूंकि आकाश में दिखायी देने वाली उल्काएं एक ही बिन्दु से फैलती हुई प्रतीत होती हैं, इसलिए इन्हें विकिरित करने वाली (radiant) कहते हैं। एक धारणा के अनुसार तारों के बीच विकिरणकारिता की स्थिति से वर्षोल्का का नामकरण किया जाता है। सुविख्यात पर्सीयड (perseid) वर्षोल्का को पर्सीयड वर्षोल्का इस कारण कहते हैं, क्योंकि इसका विकरणकारी परशु (Perseus) में स्थित होता है। इस प्रकार की वर्षोल्का की सभी उल्काएं अन्तरिक्ष में समानान्तर घूमती हैं।

**निरीक्षण की विधियां**

जब टूटने वाले तारों की वास्तविक प्रकृति का बोध हुआ, तो बहुत-से वैज्ञानिकों का ध्यान इनकी उत्पत्ति की समस्या की तरफ आर्कषित हुआ, और आज भी इस समस्या का पूर्ण समाधान प्राप्त नहीं हो पाया है। इसका कारण ठीक निरीक्षण लेने में होने वाली कठिनाई है, क्योंकि एक क्रियाशील वर्षोल्का में भी प्रत्येक उल्का बिना पूर्व सूचना के प्रकट होती है और सेकण्ड के छोटे-से हिस्से में ही समाप्त हो जाती है।

सूर्य के चारों ओर किसी कण के ग्रहपथ का पता लगाने के लिए वायुमण्डल में उल्का की उड़ान की दिशा और वेग को नापना अति आवश्यक है। २०वीं सदी तक आंखों से निरीक्षण के अलावा निरीक्षण के और तरीके नहीं थे और इस प्रकार लिये गये निरीक्षणों में, विशेषतः वेग के निरीक्षणों में बहुत त्रुटि रहती थी। तब भी वैज्ञानिकों ने बहुत महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले और उनके आधार पर यह सिद्ध किया कि कुछ प्रसिद्ध वर्षोल्काओं में उल्कापिण्ड सूर्य के चारों ओर उन्हीं वृत्तों में घूमते हैं जैसे कुछ पुच्छल तारे।

२०वीं सदी के आरम्भ में फोटोग्राफी को इस समस्या के समाधान के लिए प्रयुक्त किया गया। अगर फोटोग्राफी की प्लेट उल्का को अंकित करने में काफी सुग्राही है, तो इसकी उड्डयन की दूरी को ठीक-ठीक नापा जा सकता है। गति नापने की समस्या का समाधान एल्किन ने प्रस्तुत किया जिसने शटर (shutter) को कैमरा के सामने घुमाया जिससे ताल सेकण्ड में कई बार छिपा रहा। उल्का की चमकीली रेखा फोटोग्राफी की प्लेट पर स्पष्ट रूप से दिखायी देती है। इस वृत्त खण्ड की लम्बाई को नापकर गति की गणना की जा सकती है। वास्तव में इस प्रकार प्रयोग किया गया, अकेला कैमरा उल्का का कोणिक वेग देता है, क्योंकि इसकी ऊंचाई अज्ञात है। उल्का की वास्तविक गति नापने के लिए इस तरह के दो कैमरों को मीलों की दूरी पर साथ-साथ प्रयोग में लाना चाहिये।

सिद्धान्त के रूप में ये फोटोग्राफी के तरीके बहुत ही ठीक माप दे सकते हैं, लेकिन इसके




CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत-से परिणामों को इकट्ठा करना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि फोटोग्राफी का द्रव्य प्रकाश से क्रिया के लिए काफी सुग्राही नहीं होता है और सिर्फ चमकीली उल्का को ही अंकित कर सकता है। बहुत ही सुग्राही कैमरों का दृष्टि का क्षेत्र सीमित होता है। इन सब कठिनाइयों के कारण ही हारवर्ड की प्रसिद्ध निरीक्षणशाला में १९४८ तक १,००० घण्टे के एक्सपोजर में सिर्फ एक उल्का दिखायी पड़ी; इसके साथ-साथ चन्द्रमा का प्रकाश और बादल भी इसमें बाधा डालते हैं। पिछले कुछ वर्षों में सुपर स्मिट्स (super schmidts) कैमरा के आविष्कार से इन कठिनाइयों को मुख्यतः खत्म कर दिया गया है। इसमें एक विशेष तरह की सुधार करने वाली प्लेट (correctiong plate) होती है जो कैमरा के बड़े मुख्य व्यास के साथ विस्तृत दृष्टि का क्षेत्र प्रस्तुत करती है जिससे यह बहुत ही कम शक्तिशाली उल्का को भी अंकित कर सकता है।

**रेडियो तरीके** (Radio Methods)

सुपर स्मिट कैमरा के आविष्कार से पहले पूर्णरूप से भिन्न तरीके ने उल्का के निरीक्षण के विषय में क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी। जब कोई उल्का वायुमण्डल में जलती है, यह प्रकाश की एक रेखा पैदा करती है जिसके द्वारा हम इसे देखते हैं। लेकिन इसके साथ-साथ यह आयनीकृत परमाणु और इलेक्ट्रानों की एकल कीर पीछे छोड़ जाती है। यह आयनीकृत द्रव्य बहुत जल्द विसरित हो जाता है और सेकण्ड के कुछ भाग में ही उदासीन स्थिति में बदल जाता है। लेकिन इससे पहले कि यह ऐसा करती है, मुक्त इलेक्ट्रान एक रेडियो तरंग की ऊर्जा को विकिरित करने की सामर्थ्य रखते हैं। ये तरीके राडार से मिलतेजुलते हैं। पृथ्वी से प्रेषी छोटी-छोटी रेडियो तरंगें भेजता है। राडार में ये वायुयान से टकराकर

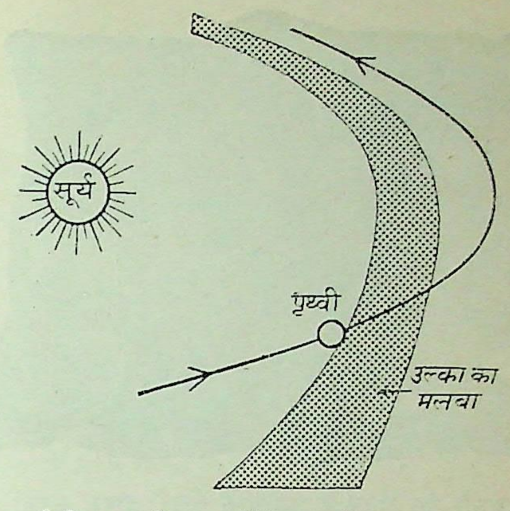


**पृथ्वी के मल की धारा में से गुजरने पर उल्काबे की बौछार का उत्पादन**

परावर्तित होती हैं। परावर्तित तरंगें विशेषतः एक ग्राहक द्वारा ग्रहण की जाती हैं जो ट्रांसमीटर की आवृति पर मिला हुआ होता है। वायुयान कैथोड-रे ट्यूब पर प्रतिध्वनि की तरह दिखायी देता है। उल्का के विषय में रेडियो तरंगें इलेक्ट्रानों द्वारा विकिरत होती हैं जो उल्का की लकीर में स्थित होते हैं। और उसी प्रकार की प्रतिध्वनि कैथोड-रे ट्यूब में दिखायी देती है।

यह उल्का प्रतिध्वनि बहुत ही थोड़ी देर के लिए होती है। कभी-कभी आने वाली चमकीली उल्काएं कुछ सेकण्डों में खत्म होने वाली प्रतिध्वनि देती हैं। मुख्यतः अधिकतर उल्काएं सेकण्ड के दसवें भाग में ही खत्म हो जाती हैं।

कैथोड-रे ट्यूब के भिन्न-भिन्न चित्रों को चित्रित करने के लिए फोटोग्राफी रिकार्ड के साथ विशेष प्रकार के अतिरिक्त तरीके विकसित किये गये हैं, और आज उल्का की दिशा और वेग को बिना आकाश की ओर देखे ठीक-ठीक नापा जा सकता है। इन रेडियो तरीकों से दो प्रकार के लाभ भी हैं। पहला यह कि ये आकाश की दशाओं से स्वतन्त्र होते हैं। इस प्रकार आकाश की हर परिस्थिति में,



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**घूमते हुए शटर के प्रयोग से कैमरे द्वारा उल्का के आगमन के फोटोग्राफ की रेखानुकृति**

वायुमण्डल में उल्का के आगमन का विधिवत् निरीक्षण किया जा सकता है। दूसरा यह कि इन साधनों को इतना सुग्राही बनाया जा सकता है कि इनके द्वारा उन उल्काओं को अंकित करने में कोई कठिनाई नहीं होती है जिन्हें न आंख से देखा जा सकता है और न जिनका फोटो लिया जा सकता है।

**उल्का की उत्पत्ति**

उल्का की उत्पत्ति के विषय में वैज्ञानिक बहुत विवादग्रस्त रहे हैं लेकिन पिछले कुछ वर्षों में रेडियो साधनों और सुपर स्मिट कैमरे द्वारा बहुत-सी अनिश्चितताओं को समाप्त कर दिया गया है।

**वर्षोल्का**

वर्षोल्काओं में कुछ विशेषतः उल्लेख्य क्वाडरेण्टाइटाइड् (quadrantids), पर्सीयड्स और जेमीनाइड्स (geminids) अपने आकार में बहुत ही नियमित हैं और हर वर्ष एक ही दर से उल्का उत्पन्न करती हैं। इससे पता चलता है कि उल्का का मलबा ग्रहपथ के चारों ओर पूर्णतया विकरित होता है। इसलिए पृथ्वी मलबे का उतना भाग अपने साथ ले जाती है जितने बिन्दुओं पर यह ग्रहपथ को काटती है। दूसरी वर्षोल्काएं, जैसे टाइराइड्स (tyrids), लीओनाइड्स (leonids) और जीआकोबीनाड्स (giacobinids) बिलकुल भिन्न हैं। कभी-कभी ये उल्का के तूफान देती हैं और मध्यवर्ती वर्षों में क्रियाशीलता बहुत कम रहती है, उदाहरणतः १७९९, १८३३ और १८६६ की लीओनाइड्स मशहूर हैं और हाल ही में १९४६ के १० अक्टूबर की जीआकोबीनाइड वर्षोल्का इसी तरह की थी। दूसरी मनोरंजक वर्षोल्काएं बीलाइड्स (bielids) हैं जिन्होंने १९ वीं सदी में महान् प्रदर्शन प्रस्तुत किये। इन सभी में यह सम्भव है कि मलबा ग्रहपथ के एक ही क्षेत्र में सीमित हो। सूर्य के चारों ओर घूमने वाली मलबे की धारा, ग्रहों मुख्यतः बृहस्पति के बलों द्वारा शासित होती है और इसी कारण बीलाइड वर्षोल्का का मुख्य लावा पृथ्वी के ग्रहपथ के समतल से बाहर फेंक दिया गया था।

१८६६ में जी. वी. शिपेयरली (G. V. Schiparelly) यह दिखाने में सफल हुआ कि पर्सीयड्स और लीओनाइड्स में उल्का का मलबा मुख्य रूप से सूर्य के चारों ओर उन्हीं ग्रहपथों में घूमता है जिनमें दो प्रसिद्ध पुच्छलतारे घूमते हैं। इस प्रकार कुछ उल्काओं की धारा और पुच्छलतारों में निकट सम्बन्ध स्थापित हो गया है। पर्सीयड्स और लीओनाइड्स के साथ-साथ अब यह माना जाता है कि लाइराइड्स (lyrids), बीलाइड्स इत्यादि भी ज्ञात पुच्छलतारों के साथ जुड़ी हुई हैं।

**कादाचनिक उल्काएं**

यद्यपि वर्षोल्का के विषय में प्रश्न रहे हैं, लेकिन यह हमेशा पाया गया है कि इनके लिए जिम्मेदार कण बन्द ग्रहपथ में घूमते हैं और क्योंकि ये सूर्य के चारों ओर घूमते हैं इसलिए मुख्यतः सौरमण्डल के सदस्य हैं। दूसरी तरफ इन उल्काओं के विषय में बहुत विवाद रहा है। इसके लिए परस्पर विरोधी धारणाएं



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं—(१) कादाचनिक उल्काओं के ग्रहपथ भी वर्षोल्काओं की तरह के हैं, क्योंकि ये सौरमण्डल तक ही सीमित रहती हैं, (२) कादाचनिक उल्काओं के ग्रहपथ बन्द नहीं हैं इसलिए ये उल्काएं अन्त:तारकीय अन्तरिक्ष में दर्शक के रूप में और अस्थायी रूप से सूर्य के प्रभाव में रहती हैं। इस समस्या को तय करना कठिन था, क्योंकि अतिपरवलयिक रास्ते में और बड़े दीर्घवृत्तों में घूमने वाली उल्का की गति में बहुत कम परिवर्तन होता है। आजकल यह बताया जाता है कि यह विवाद सुपर स्मिट कैमरा, रेडियो प्रतिध्वनि विधि और फोटोग्राफिक साधनों द्वारा तय कर दिया गया है जिनसे पता चलता है कि सब ग्रहपथ दीर्घवृत्तीय हैं। वास्तव में जोर्डल बैंक (Jordal Bank) में रेडियो प्रतिध्वनि द्वारा मापी गयी उल्काओं के १०,००० ग्रहपथों में एक भी ग्रहपथ अतिपरवलयिक नहीं मिला। इसके विपरीत अधिकतर उल्काएं कम समय के दीर्घवृत्तीय ग्रहपथों में घूमती मिली हैं।

यद्यपि यह बात अब निश्चित हो गयी है फिर भी उल्काओं का सौरमण्डल से सम्बन्ध आज भी विवादग्रस्त है। यह समस्या कि यह द्रव्य (lava) सौरमण्डल के हाल के विघटन के कारण है या यह पूर्व द्रव्य में से कुछ है, अभी तय होने के लिए शेष है।

**उल्का और ऊपर के वायुमण्डल का निरीक्षण**

जैसे ही उल्का वायुमण्डल में घुसती है यह हवा के परमाणुओं से टकराती है और संघट्ट की ऊर्जा उष्मा के रूप में प्रकट होती है जो उल्का के बहुत से परमाणुओं को वाष्पीभूत करने के लिए काफी होती है। ये बाष्पीभूत परमाणु उल्का से अलग घूमते हैं और उसके रास्ते के पास के हवा के परमाणुओं से टकराते हैं।

इन्हीं टक्करों के कारण आयनीकृत और प्रकाशमय लकीर बनती है।

वह ऊंचाई जिस पर उल्का बाष्पीभूत होती है, उल्का की गति और मात्रा पर निर्भर रहती है।

सत्तर मील की दूरी पर वायुमण्डल इतने कम घनत्व का हो जाता है कि कोई बाष्पीकरण सम्भव नहीं है। वास्तव में यह देखा गया है कि अधिकतर उल्काएं ५०-७० मील के बीच पूर्णरूप से बाष्पीभूत हो जाती हैं। इस दूरी में वायुमण्डल पूर्ण बाष्पीकरण के लिए काफी घना होता है। दूसरी ओर बड़ी-बड़ी उल्काएं ५० मील से भी नीचे विना बाष्पीभूत हुए आ जाती हैं। इस समय वायुमण्डल इतना घना हो जाता है कि हवा के परमाणु उल्का के सामने इकट्ठे होने लगते हैं।

इन बातों से यह स्पष्ट है कि उल्का के बाष्पीकरण के अध्ययन से प्रारम्भिक भौतिक क्रियाओं का पता लगाया जा सकता है जो इस ऊंचाई पर हो रही हैं।

**ऊपरी वायुमण्डल के भौतिक गुणों का निरीक्षण**

किसी निश्चित ऊंचाई पर दी गयी मात्रा और गति (उस उल्का की जिस पर बाष्पीभूत होती है) उस ऊंचाई पर हवा के घनत्व पर निर्भर रहती है। इस तरह रेडियो प्रतिध्वनि के तरीके द्वारा उल्का की गति और मात्रा नापकर ऊपरीय वायुमण्डल के घनत्व को नापा जा सकता है। इस तरीके से

उल्काएं पृथ्वी पर गिरती रहती हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

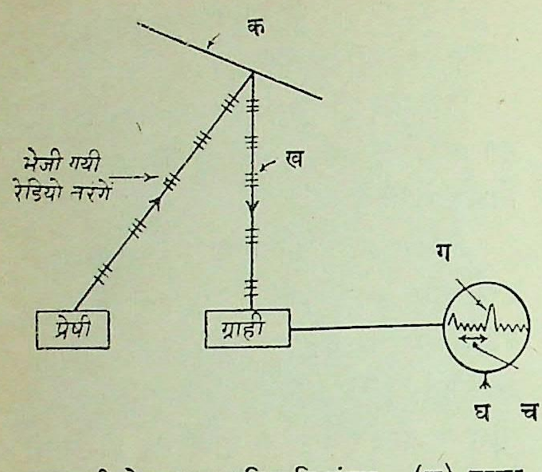


उल्का की रेखा द्वारा प्रतिध्वनि अंकन—(क) उल्का की रेखा, (ख) उल्का रेखा द्वारा विकरित रेडियो तरंगें, (ग) उल्का की प्रतिध्वनि, (घ) उल्का द्वारा तय की गयी दूरी और (च) कैथोड-रे ट्यूब

बहुत-सी उल्काओं से परावर्तन विन्दु की ऊंचाई और गति नापी जाती है। ये निरीक्षण ५०-७० मील के क्षेत्र में भिन्न-भिन्न ऊंचाई पर हवा के घनत्व को बताते हैं। पिछले वर्षों में बहुत ऊंचाई पर बहने वाली आंधियों का आभास कभी-कभी आने वाले उल्का के बड़े तूफानों से किया गया था। हाल ही में रेडियो प्रतिध्वनि के तरीके को इन आंधियों के ठीक-ठीक और विधिवत मापन के लिए प्रयुक्त किया गया है।

**उल्का की संख्या और मात्रा**

हम जानते हैं, रेडियो तरीकों द्वारा बहुत ही सूक्ष्म उल्का का भी पता लगाया जा सकता है। निरीक्षणों द्वारा यह स्पष्ट पता लगा है कि चमकीली उल्का की अपेक्षा कम चमकीली उल्का की संख्या बहुत अधिक है। उल्का की संख्या और मात्रा में इस प्रकार का सम्बन्ध है कि उल्का के मन्द होने में मात्रा में जो कमी होती है वह उसकी संख्या में बढ़ोत्तरी द्वारा पूरी हो जाती है।

यद्यपि अकेला निरीक्षक प्रति घण्टे बहुत कम उल्का देख पाता है, लेकिन वायुमण्डल में घुसने वाली कुल उल्काओं की संख्या बहुत अधिक है। निरीक्षणों द्वारा यह पाया गया है कि आंख से दिखायी देने वाली लगभग १० करोड़ उल्काएं रोज वायुमण्डल में घुसती हैं। बहुत ही चमकीली उल्काओं की मात्रा १०० ग्राम से अधिक नहीं होती है।

उल्का की मात्रा के विषय में बहुत मतभेद है। आम दिखायी देने वाले टूटते तारे निश्चित रूप से बहुत छोटे हैं। वास्तव में बहुत-से तो बालू के कणों से भी छोटे होते हैं। यह सोचा जाता है कि बहुत ही चमकीली उल्का की मात्रा भी १०० मिलीग्राम से अधिक नहीं होती है।

यह एक मनोरंजक वास्तविकता है कि यद्यपि वर्षोल्काएं कादाचनिक उल्काओं की अपेक्षा अधिक देखने योग्य होती है, फिर भी ये इतने कम समय के लिए रहती हैं कि एक साल में कादाचनिक उल्काओं द्वारा लायी गयी मात्रा की अपेक्षा चौथाई ही मात्रा वायुमण्डल में ला पाती हैं। उदाहरणतः अगस्त में पर्सीइड वर्षोल्का सिर्फ ८२ टन लावा ही ला पाती है जब कि सैकड़ों टन कादाचनिक उल्काएं वर्ष में वायुमण्डल में घुसती हैं। और बड़ी-बड़ी कोबीनाइड वर्षोल्काएं भी जो उल्का का तूफान देती है, सिर्फ ७० टन मलवा ही पृथ्वी को दे पाती हैं। पृथ्वी पर इकट्ठा होने वाले मलबे का अधिकांश भाग उल्काओं द्वारा ही लाया जाता है। •

## कोलाहल-निरोधी यन्त्र

लतविया में निर्मित एक नवीन मौलिक यन्त्र द्वारा अब शोर न सुनना सम्भव हुआ है। यह यन्त्र एक छोटा-सा ट्यूब है। इसकी बाहरी सतह पर महीन छिद्रों की चार पंक्तियां खुदी हुई हैं। इस आविष्कार का प्रयोग उन यन्त्रों में किया जायेगा जिनमें से चलने पर शोर उत्पन्न होता है।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विविध संसार

## संगीत संग्रहालय

मास्को में शीघ्र ही एक विशेष भवन संगीत संग्रहालय के लिए बनेगा। इस संग्रहालय में ३,५०,००० वस्तुएं रहेंगी जिनमें विविध प्रकार के बाजे, पाण्डुलिपियां आदि होंगी। ये बाजे, पाण्डुलिपियां प्रसिद्ध संगीतज्ञों से सम्बन्धित होंगी। साथ ही एक बड़ा पुस्तकालय भी होगा जिसमें रेकार्ड और टेपरेकार्ड होंगे।

यह भवन पूरे एक खण्ड में होगा। वहां आने वाले सड़क पर से ही गिलवा के 'इवान सुसानिन' की प्रसिद्ध धुन सुन सकेंगे।

यह संगीत संग्रहालय विश्व में अनोखे ढंग का होगा।

## आधुनिकतम दुर्घटना अस्पताल

लुडविगशेफन-राइन का नया दुर्घटना अस्पताल यूरोप का आदर्श अस्पताल है। इस आधुनिकतम दुर्घटना अस्पताल पर लगभग ८.७५ मिलियन डालर राशि व्यय होगी। यह १९६८ में बनकर तैयार होगा। किसी भी सामान्य अस्पताल में प्रति पलंग पर ८५,००० डालर का खर्च इस बात का संकेत है कि इसमें अत्यन्त आधुनिक तकनीकी उपकरण लगाये गये हैं तथा उच्चकोटि के वैज्ञानिक परीक्षणों का प्रबन्ध किया गया है। इस नौ मंजिल की इमारत का सबसे महत्त्वपूर्ण विभाग है जलने का इलाज करने वाला वार्ड। इसे बाहरी प्रभावों से मुक्त रखा गया है। इसमें विभिन्न वन्द संस्थानों से पहुंचा जा सकता है। इसके सभी कमरे वातानुकूलित हैं। स्थानीय छूत से रोग-विस्तार का सामना करने के लिए परा-बैंगनी किरणों का प्रयोग किया जाता है जो जले के घावों में खतरनाक हैं। इस अस्पताल में बीमारी के बाद का उपचार केन्द्र भी होगा। इसमें नहाने तथा तैरने का तालाब, जिमनास्टिक तथा स्कूल भी होगा।

## परमाणु बम गिरने के स्थान पर स्नान

मैड्रिड के एक समाचार के अनुसार हाल ही में अमरीकी राजदूत बिडल ड्यूक और स्पेन के सूचना मन्त्री फ्रागा इरीबार्न ने अपनी पत्नी-बच्चों के साथ एक असाधारण स्नान किया।

दोनों सागर के उस भाग में तैरे जहां अमरीका के एक ध्वस्त यान से परमाणु बम गिर गया था।

बम फटा नहीं था, पर उसके कारण स्पेन में यह आशंका फैल गयी थी कि उस बम से जल इतना विषाक्त हो गया होगा कि उसके सम्पर्क में आने से प्राणी अपनी जान खो सकते हैं।

अमरीका के सैनिक विशेषज्ञों का यह दावा रहा है कि अमरीका के परमाणु बमों में ऐसी व्यवस्था की गयी है कि उनका विस्फोट तभी हो सकता है जब वे चाहेंगे। दुर्घटनावश गिरने वाले बम नहीं फट सकते। अमरीका के राजदूत तथा स्पेन के सूचनामन्त्री का स्नान इसी दावे की सत्यता का प्रदर्शन करने के लिए किया गया।

उक्त स्नानार्थियों को कोई हानि नहीं हुई।

## सबसे बड़ी डकैती की फिल्म और कुछ दिलचस्प घटनाएं

इंग्लैण्ड की डाकगाड़ी में ८ अगस्त १९६३ को हुई सबसे बड़ी डकैती की पश्चिम जरमनी में टेलीविजन फिल्म बनायी गयी। यह फिल्म बड़ी सफल रही।

यह फिल्म तीन अंकों में तीन दिन तक दिखायी गयी और इसे देखने के लिए वहां के लोगों ने सिनेमा तथा थियेटर आदि जाना बन्द रखा जिससे सिनेमा, थियेटर आदि को उतना ही नुकसान हुआ जितने की डकैती हुई थी। यह राशि २६,३१,५०० पौण्ड से



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक थी (लगभग ३ करोड़ ३८ लाख रुपये)।

फिल्म के निर्माण में निर्माता को लगभग पांच लाख डालर खर्च करना पड़ा तथा एक वर्ष का समय लगा। इसकी कहानी पत्रकार और लेखक हेनरी कोलार्ज ने डाकुओं के सरदार भूतपूर्व मेजर ब्रूस रेनील्ड द्वारा बताये गये सही तथ्यों पर लिखी है।

फिल्म में अधिक से अधिक वास्तविकता लाने के लिए इसकी शूटिंग इंग्लैण्ड में की गयी थी।

इसमें २५ मुख्य अभिनेताओं और लगभग सवा सौ छोटे अभिनेताओं ने भाग लिया।

इसके निर्माण में सबसे दिलचस्प घटना तब घटी कि जब काफी श्रम के बाद इंग्लैण्ड में शूटिंग खत्म हुई तो इस बड़ी डकैती की फिल्म बनाने वाले खुद चोरी के शिकार हो गये। उनका बहुत-सा कीमती सामान रहस्यमय ढंग से चोरी चला गया। एक और दिलचस्प घटना यह घटी कि इस फिल्म में अभिनय करने वाले दो डाकू जिन्हें तीस-तीस वर्ष की सजा हुई थी और जिन्हें इस फिल्म के निर्माण तक की अवधि के लिए रिहा किया गया था, अचानक गायब हो गये।

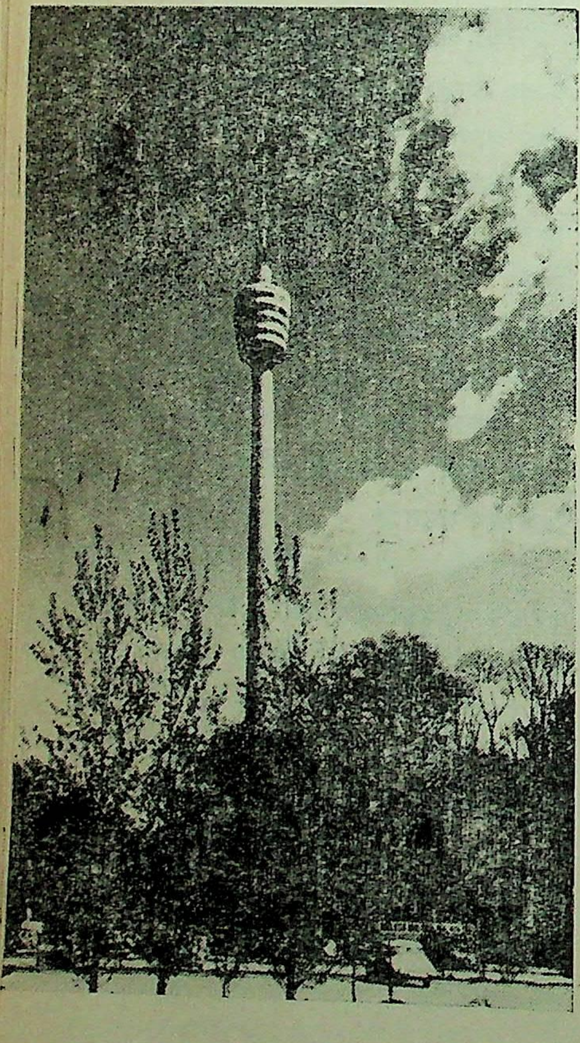

डाकुओं के गायब होने के कारण सारा कथानक दोबारा लिखना पड़ा था।

**चलना-फिरना वैज्ञानिक संग्रहालय**

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान परिषद के सहयोग से बिड़ला औद्योगिक तथा प्राविधिक संग्रहालय ने १७ नवम्बर १९६९ से एक चलते-फिरते संग्रहालय का आयोजन किया है। इस संग्रहालय में तीस प्रदर्शन सेट हैं जो विविध वैज्ञानिक सिद्धान्तों को भली-भांति प्रदर्शित करते हैं। इस प्रदर्शनी में सर्वप्रथम 'हमारी परिचित विद्युत्' नामक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया है। यह बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा के सभी स्कूलों में दिखायी जायेगी। गांवों में भी इस संग्रहालय का प्रदर्शन होगा। अगली प्रदर्शनी ऊर्जा पर आधारित होगी।

**टेलीविजन मीनारों के 'पिता' की १०वीं वर्षगांठ**

सारे संसार में जो टेलीविजन मीनारें हैं, उनके 'पिता' की दसवीं वर्ष गांठ अभी हाल ही में मनायी गयी है। दुनिया के विभिन्न देशों में १०० मीटर से अधिक ऊंचाई वाली ३५ से अधिक मीनारें हैं। स्टुटगार्ट नगर की २१७ मीटर ऊंची इस 'पिता' मीनार के ढंग पर ही सभी मीनारें निर्मित की गयी हैं। इस मीनार को देखने अब तक सारे संसार से लगभग ७२ लाख दर्शक आ चुके हैं। दस वर्षों के अन्दर इस मीनार के ऊपर एक रेस्त्रां बन गया है। •



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# घर में बिजली की लाइन जलना

रमेशप्रसाद शर्मा, एम. ए., बी. एस-सी.

बिजली की धारा द्वारा प्रत्येक प्रकार की सुख-सुविधा का साधन हमें अपने घर में मिलता है। बीसवीं सदी की यह अनुपम देन आपके घर के अन्दर दीवार और छत के सहारे लगे हुए तार की दुहरी लाइन द्वारा प्रवेश करती है। अंधेरे घर में उजाला करती है, रेडियो बजाती है, हीटर पर खाना पकाती है और छोटे-बड़े अनेक काम करती है।

पावर हाउस की लाइन से आने वाले दोनों तार सबसे पहले घर की देहलीज या बरामदे में लगे मीटर में से गुजरते हैं जिससे जितनी विद्युत् शक्ति प्रयोग में लाते हैं वह अंकित हो सके। मीटर में से दोनों तार मेन स्विच और फ्यूज बाक्स में से गुजरते हैं। मेन स्विच एक प्रकार का डबल पोल स्विच होता है, अतः इसे आफ कर देने के उपरान्त दोनों तारों का सम्बन्ध घर के अन्दर के सर्किट से एकदम अलग हो जाता है। यह लोहे के बने फ्यूज बाक्स के अन्दर ही होता है। इस बाक्स के दायीं ओर एक लीवर होता है जिसे नीचे गिरा देने से बाक्स खुलता है और लीवर ही मेन स्विच को आफ कर देता है। बाक्स के ढक्कन को पेच द्वारा बन्द करने और लीवर को अपनी पूर्व स्थिति में लाने पर स्विच आन हो जाता है। मेन फ्यूज बाक्स में दोनों तारों की लाइन पर मेन फ्यूज बंधे रहते हैं। यदि कभी लाइन में निश्चित् मान से अधिक प्रबल धारा बहने लगती है, तो फ्यूज तार तुरन्त ही पिघल जाता है और धारा के आगे न बहने के कारण लाइन में लगे अन्य उपकरणों को कोई नुकसान नहीं पहुंचता है।

**मेन-फ्यूज बाक्स के बाद**

मेन फ्यूज बाक्स से निकालकर लाइन के तार ब्रांच फ्यूज बाक्स में जाते हैं। अलग-अलग सर्किट रखने से फायदा यह होता है कि अगर फ्यूज पिघलता है, तो केवल एक ही सर्किट का, शेष सर्किट ठीक रहते हैं और उनके बल्ब और अन्य विद्युत् उपकरण काम देते रहते हैं। प्रत्येक ब्रांच सर्किट के दोनों तारों की लाइन में एक-एक फ्यूज तार लगाये जाते हैं। फ्यूज सदैव उसी एम्पियर का लगाया जाता है जितने एम्पियर की विद्युत्-धारा उस ब्रांच में बहती है। घरों में २२० वोल्ट की विद्युत्-धारा प्रवाहित होती है। एक बल्ब या विद्युत् यन्त्र के काम आने या न आने पर अन्य बल्बों या विद्युत् यन्त्रों पर असर न पड़े, इसके लिए बल्ब तथा बिजली के अन्य यन्त्र एक-दूसरे के समान्तर जोड़े जाते हैं। ऐसा करने से सभी यन्त्र एक-दूसरे से स्वतन्त्र रहते हैं। प्रत्येक विद्युत् उपकरण में विद्युत्-धारा के प्रवाहित होने या प्रवाहित होने से रोकने के लिए सिंगल पोल स्विच लगाये जाते हैं। स्विच आफ कर देने पर सर्किट टूट जाता है, अतः विद्युत्धारा का प्रवाहित होना रुक जाता है।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पोर्सीलीन के बने क्लीट

स्विच आन कर देने पर विद्युत् सर्किट जुड़ जाता है और विद्युत्-धारा प्रवाहित होने लगती है। बल्बों के लिए होल्डर और रेडियो, टेबिल फैन आदि के लिए आउटलेट, जिनमें दो या तीन सूराख होते हैं, लगाये जाते हैं। टेबिल लैम्प, रेडियो या, टेबिल फैन की डोरी पर पीतल की दो या तीन पिनों वाला प्लग पिन लगाया जाता है, जो आउटलेट में फिट बैठता है।

मेन फ्यूज के लोहे के बाक्स से तांबे या लोहे का एक लम्बा तार धरती में दबी हुई एक प्लेट से जुड़ा रहता है। यह विधि ग्राउण्डिग कहलाती है। इसके द्वारा बिजली का शाक लगने का भय नहीं रहता है।

**नक्शा तैयार करना**

घर के अन्दर बिजली के तार की लाइन डालने के लिए पहले एक साधारण-सा नक्शा तैयार किया जाता है। इसमें इस बात का ध्यान रखा जाता है कि घर की देहलीज से हमें तारों की लाइन किधर ले जानी है और कहां-कहां बल्ब आउटलेट फिट करने हैं। यह सब भलीभांति निश्चित हो जाने के पश्चात् गेरू और डोरी की सहायता से धरती के समानान्तर सीधी-सीधी लाइनें खींची जाती हैं। टेढ़ीमेढ़ी लाइनें बहुत ही भद्दी दिखायी देती हैं, अतः इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिये कि लाइनें पूर्णरूपेण सीधी हों। बिजली के तार अथवा केबल को जब एक कमरे से दूसरे कमरे में गुजारा जाता है, तो दीवार के अन्दर लोहे की एक नली लगायी जाती है, ताकि तार सुरक्षित रहें। इसे कण्डूत कहते हैं। कण्डूत नली के दोनों सिरों पर लकड़ी के कालर लगे रहते हैं जिनसे नली के कोर की रगड़ से तार पर लगी हुई रबर खराब न हो। नली में से तार को गुजारने का भी काम सावधानीपूर्वक करना चाहिये।

गेरू लगे धागे की सहायता से खींची हुई लाइन से थोड़ी-थोड़ी दूरी पर गिट्टक के आकार के छेद दीवार में किये जाते हैं और उन पर थोड़ा-सा सीमेण्ट लगाकर उन्हें सूराखों में इस प्रकार लगाया जाता है कि उनका अधिक चौड़ा भाग अन्दर की ओर रहे और कम चौड़ा भाग बाहर की ओर, दीवार की सतह से बिलकुल मिल जाय। अब गिट्टक के आस-पास अगर खाली जगह रह जाती है तो वह भी सीमेण्ट से भर दी जाती है। गिट्टक को कभी भी हथौड़े से ठोंकना नहीं चाहिये क्योंकि इससे गिट्टक का सिरा कमजोर हो जाता है और पेच मजबूती से नहीं पकड़ सकता। घरों में काम आने वाले तार नंगी दशा में कभी नहीं लगाये जाते। ये सदैव ढके हुए होते हैं। इन पर रबर और रेशम का या अन्य प्रकार का कुचालक आवरण (insula-ting coating) चढ़ा रहता है। घरेलू काम के लिए १८ एस. जी. डब्लू. का तार (रोशनी आदि के लिए) प्रयोग में आते हैं। इसे १/१८ भी कहते हैं, जिसका मतलब होता है कि क्वाइल में १८ नम्बर का १ तार है। १/१८ के तार के अलावा ३/२२ का तार भी रोशनी आदि के काम आता है। इसका मतलब होता है कि क्वाइल में २२ नम्बर के तीन तार हैं। आजकल बिजली के तार डालने की तीन प्रमुख विधियां हैं—(१) पोर्सीलीन क्लीट





CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

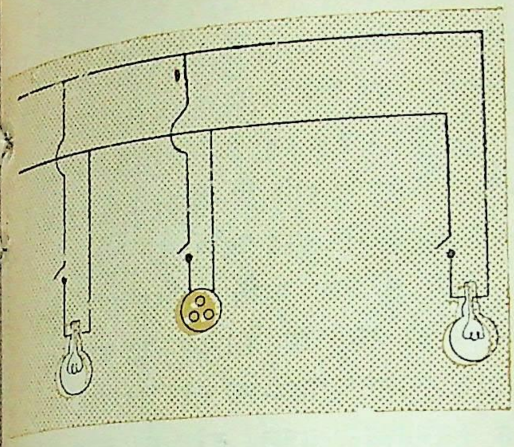

बल्ब तथा आउटलेट का समानान्तर सम्बन्ध

विधि (२) लकड़ी केसिंग विधि और (३) सी.टी.सी. वायरिंग विधि।

**पोर्सीलीन क्लीट विधि**

यह बिजली के तारों की लाइन बिछाने का सस्ता और विश्वस्त तरीका है। इस विधि में गिट्टकों की दूरी १० या १२ इंच से दूर नहीं होनी चाहिये। पोर्सीलीन के बने हुए क्लीटों के बीच दोनों तार एक-दूसरे के समानान्तर बिछाये जाते हैं। मुख्यतः क्लीट के दो भाग होते हैं। पहले क्लीट के नीचे वाला भाग जिसे गिट्क के ऊपर लगाया जाता है और फिर तार को खांचे में फंसाकर क्लीट का ऊपर का ढक्कन पेंच से कस दिया जाता है। इस विधि में दोष सुगमतापूर्वक पकड़े जा सकते हैं। विद्युत्-धारा के प्रवाहित होने से जो गरमी लाइन में उत्पन्न होती है, वह बड़ी आसानी से रिसती रहती है। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि कहीं से भी तार की कोटिंग खराब होकर अर्थ न हो। इस प्रकार की वायरिंग केवल सूखे स्थान पर ही की जाती है, अधिक वर्षा वाले स्थानों पर नहीं। ऐसे स्थानों पर जहां जल्दी-जल्दी एक स्थान से दूसरे स्थान पर वायरिंग हटानी पड़ती है, यह वायरिंग अत्यन्त उपयुक्त है।

**केसिंग विधि**

इसके अनुसार तारें केसिंग के अन्दर समानान्तर गलियों में से गुजरती हैं और उन्हें ऊपर से कैपिंग से ढंक दिया जाता है। वायरिंग का यह भी सस्ता और सुन्दर तरीका है। दीवार और छतों पर निशान लगा लिये जाते हैं, और गिट्टकें दो-दो फुट की दूरी पर लगायी जाती हैं। पहले नक्शे के अनुसार केसिंग लगायी जाती है, फिर तारों को केसिंग के गलियारों में डालकर कैपिंग को पेच से कस दिया जाता है। कैपिंग और केसिंग के जोड़ सीधे ९० अंश पर हों, तो केसिंग के गलियारों में गोलाई कर देनी चाहिये ताकि तार के ऊपर का आवरण कटने न पाय। पृष्ठ ४० पर के चित्र में केसिंग और कैपिंग का T जोड़ दिखाया गया है। जब धन-ध्रुव और

बिजली की लाइन डालने का एक साधारण नक्शा

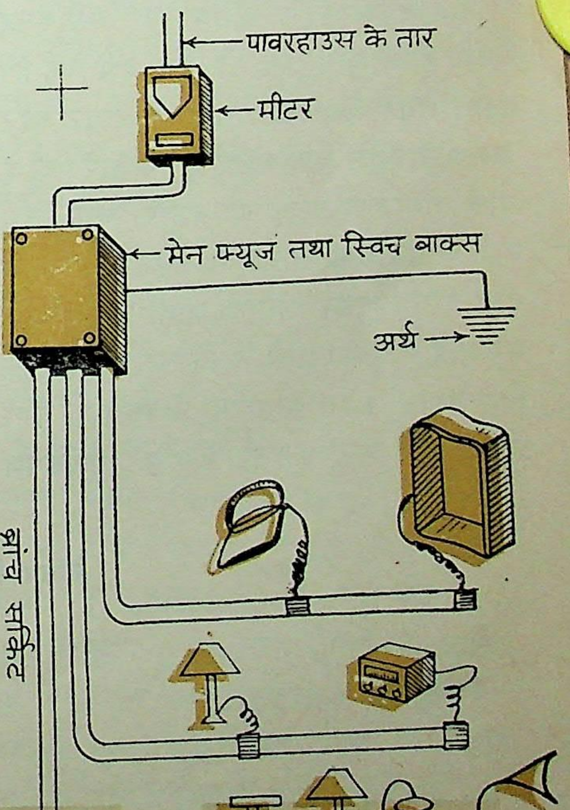




CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋण-ध्रुव की तारें एक-दूसरे के ऊपर से गुजारनी हों, तो एक के ऊपर दूसरा केसिंग रखकर क्रासिंग ब्रिज बनाना चाहिये। ऊपर के टुकड़े को स्लोप अर्थात् ढालू बना दिया जाता है, ताकि कैपिंग ठीक तरह से लगायी जा सके। दीवार के कोनों पर ९० अंश का कोण लगाना चाहिये। सुन्दरता के लिए इस वायरिंग में केवल कारीगरी की आवश्यकता है। जहां तक बिजली के प्रवाह का सम्बन्ध है, यह दोषरहित विधि है, जिसका प्रयोग प्रत्येक स्थान पर हो सकता है। इसकी जांच-पड़ताल कैपिंग को खोलकर की जाती है। कैपिंग और केसिंग पर स्प्रिट वारनिश करके नमी के प्रवेश को रोका जा सकता है। गिट्टक और केसिंग के बीच चीनी का इनसूलेटर लगा देने पर भी नमी की सम्भावना समाप्त हो जाती है। इसी विधि में आग लगने का डर होता है।

**सी. टी. एस. वायरिंग**

आजकल जिस विधि का अधिकतर प्रयोग होता है, वह सी. टी. एस. वायरिंग है। इसमें रबर इंसूलेटेड तारों के ऊपर रबर का मोटा खोल चढ़ा रहता है। ये तारें फर्श के नीचे दीवार के अन्दर या बाहर, चाहे जिस दशा में प्रयोग में लायी जा सकती हैं। पहले पास-पास गिट्टकें लगायी जाती हैं और उन पर तार लोहे की पत्ती के बने क्लिप द्वारा कस दिये जाते हैं। इस वायरिंग में पानी या नमी प्रवेश नहीं कर सकती है। यह पूर्णरूपेण सुरक्षित है। इन तारों पर प्रयुक्त रबर किसी भी रासायनिक प्रभाव से खराब नहीं होती है और मुलायम होने के कारण बड़ी सुगमता से इधर-उधर मुड़ सकती है। ये तारें किसी भी प्रकार के रंग से रंगी जा सकती हैं, वैसे इनकी सतह साफ और सुन्दर होती है।

सी. टी. एस. विधि के लिए तार अच्छे किस्म का लेना चाहिये। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि रबर का खोल तारों के इधर-उधर अच्छी तरह से चढ़ा हो। कोटिंग की रबर ऐसी हो जिस पर क्षार-अम्ल या किसी अन्य रसायन का कोई प्रभाव न हो। इस प्रकार के क्वाइल के लिए केसिंग, कण्ड्यूट या अर्थ के तार की आवश्यकता नहीं होती। प्लास्टर, कंकरीट आदि के अन्दर दाबने में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि कोई लोहे का टुकड़ा या कील तार में गड़ी न रह गयी हो, क्योंकि इससे हानि की आशंका रहती है। सी. टी. एस. विधि आसानी से लगायी जा सकती है और उस पर पानी, रेत, मिट्टी आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। यह केबल एक कोर, दो कोर, तीन कोर का गोल या चपटा होता है। चपटी शक्ल का केबल घरेलू वायरिंग के लिए ठीक रहता है।

बिजली की लाइन डालते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि मोड़ पर तार में बट न पड़ें, क्योंकि बट पड़े हुए स्थान से तार टूट सकता है। ●

**केसिंग विधि में जोड़**

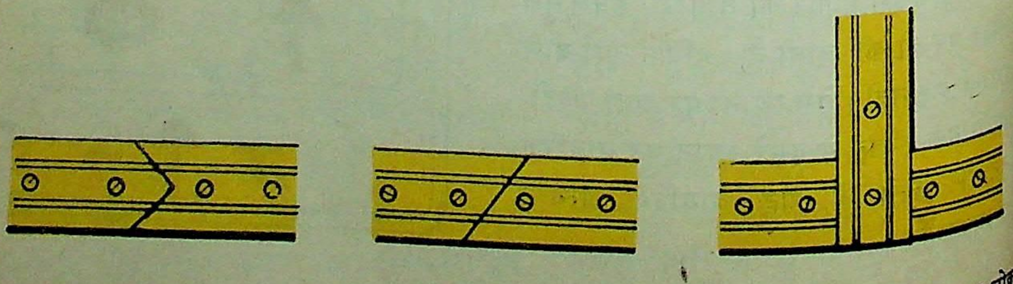



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हलदी
## महत्त्वपूर्ण घरेलू औषधि

आर. एन. सिंह, एम. एस.सी.

हमारे देश में कोई भी घर ऐसा नहीं होगा जहां हलदी का प्रयोग किसी न किसी रूप में न किया जाता हो। कहीं इसका महत्त्व पीतरंग के कारण है, तो कहीं रोगनिवारक के रूप में। कहीं यह मसाले के रूप में क्षुधा वृद्धि करती है, तो कहीं शुभसूचक होने से कामना सिद्धि करती है। घर की पाकशालाओं से लेकर वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं तक इसकी महिमा फैली है।

हलदी हमारे देश के प्रायः सभी प्रान्तों में पैदा होती है। आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र तथा गुजरात में सर्वाधिक, तथा केरल, मद्रास, मैसूर, बंगाल, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पंजाब में अल्प मात्रा में इसकी पैदावार होती है। निम्नलिखित तालिका से प्रत्येक प्रदेश में इसकी उपज का सानुपातिक ज्ञान प्राप्त करने में सहायता मिलेगी। ये आंकड़े एक वर्ष के हैं—

| राज्य | उपज-क्षेत्र (एकड़ में) | उपज (टन में) |
|---|---|---|
| उड़ीसा | ५४२६३ | ३७४७५ |
| आन्ध्र प्रदेश | ४२१५३ | ६३५८३ |
| महाराष्ट्र एवं गुजरात | १८९०४ | २६७८६ |
| केरल | १११०८ | १२१७१ |
| मद्रास | ७९८९ | ११००१ |
| मैसूर | २७५१ | २९७१ |
| बंगाल | ६०० | ३३१ |
| राजस्थान | ५९२ | २९४ |
| मध्य प्रदेश | ५०४ | १८९ |
| उत्तर प्रदेश | २८० | ५१६ |
| पंजाब | २५ | १३ |

इस उपज के अधिकांश भाग की खपत देश में ही होती है। केवल ८-१० प्रतिशत का निर्यात होता है जो मुख्यतः लंका, उत्तरी अमरीका, ब्रिटेन तथा अफ्रीकी देशों तक सीमित है।

**हलदी की जातियां**

यों तो हलदी की कई जातियां हैं, परन्तु उनमें तीन मुख्य हैं जिनके गुणों में साम्य है तथा हलदी के नाम से जानी जाती हैं। ये निम्नलिखित हैं—

(१) **सामान्य हलदी**—इसका लैटिन नाम सरकुमा लोंगा (*curcuma longa*) है तथा अंगरेजी नाम (tumeric) है। यह सितामिनासी (*scitaminaceae*) कुल की है। इसका पौधा २-३ फुट ऊंचा होता है। काण्ड सीधा तथा पत्ते १-१.५ फुट लम्बे-चौड़े होते हैं। पुष्पदण्ड ४-६ इंच लम्बा होता है जिसमें हलदी के रंग के लगभग १.५ इंच लम्बे पुष्प लगते हैं। फल लम्बा, गोलाकार और गांठदार होता है। वर्षा ऋतु में पुष्प आते हैं। इसका



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्द पीताभ, स्थूल और गंधयुक्त होता है।

यह कन्द ही हलदी के नाम से प्रयुक्त होता है।

(२) **आमा हलदी**—इसका लैटिन नाम सरकुमा आमाडा (*curcuma amada*) तथा कुल सितामिनासी (*scitaminaceae*) है। यह मुख्यत: बंगाल तथा मद्रास में जंगली रूप में उत्पन्न होती है। इसके कन्द गोलाकार तथा स्थूल होते हैं और उनमें कपूर या कच्चे आम की-सी गंध आती है। इसी लिए इसे आम्रगंधि हरिद्रा या कर्पूर-हरिद्रा भी कहते हैं। इसका कन्द पाचक तथा अग्निदीपक होता है और मसाले तथा अचार के रूप में प्रयुक्त होता है। घाव तथा मोच पर भी इसे बांधते हैं। कहीं-कहीं इसकी खेती भी होती है।

(३) **वन हलदी**—इसका लैटिन नाम सरकुमा अरोमेंटिका (*curcuma aromatica*) तथा कुल सितामिनासी (*scitaminaceae*) है। यह भारत में सभी जगह जंगली रूप में मिलती है। बंगाल तथा केरल में इसकी खेती भी होती है। इसका कन्द ऊपर से हलके पीले रंग का तथा भीतर रक्ताभ होता है। इसमें एक विशिष्ट गंध भी होती है। इसका प्रयोग मसाले के रूप में नहीं किया जाता, परन्तु अन्य कार्यों में हलदी के स्थान पर इसका उपयोग कर सकते हैं।

सामान्य हलदी सरकुमा लोंगा (*curcuma longa*) में भी भिन्न-भिन्न प्रदेशों तथा जलवायु में उत्पन्न होने के कारण थोड़ी विशेषता आ जाती है और इस कारण इसकी भी निम्नलिखित उपजातियां हैं—

(क) **मलाबार जाति**—यह चिकित्सा में उपयोग के लिए उत्तम मानी जाती है।

(ख) **पूना तथा बंगलौर जाति**—इसमें रंजिकद्रव्य की अधिकता होती है।

(ग) (१) **चमकीली तथा** (२) **हलकी जातियां** (brighter and lighter varieties)—ये बम्बई में प्रचलित हैं।

(घ) (१) **देशी तथा** (२) **पटना जातियां**—ये बंगाल में प्रसिद्ध हैं।

(च) (१) **चायना नाडन** (china nadan) **एवं** (२) **पेरुम नाडन** (perum nadan) **जातियां**—ये मद्रास में मिलती हैं।

(छ) (१) **जंगली तथा** (२) **मैदानी जातियां**—ये उत्पत्ति-स्थान के आधार पर मानी गयी हैं।

ये सामान्य हलदी की ही जातियां हैं और इन्हीं का प्रयोग सभी कार्यों के लिए किया जाता है। इसलिए इनके सम्बन्ध में ज्ञातव्य अन्य पहलुओं पर विचार करना आवश्यक है।

**हलदी की खेती**

हलदी की अच्छी उपज गरम तथा नम जलवायु में होती है। इसके लिए मुलायम दोमट जमीन जरूरी है, जहां पानी की अधिकता हो, परन्तु वह इकट्ठा न होता हो। भूमि में ऊर्वरक आदि मिलाने के बाद उसमें लगभग १६-१६ इंच के अन्तर पर क्यारियां बना लेनी चाहिये।

इन क्यारियों के ऊंचे भागों पर ६-६ इंच की दूरी पर हलदी की पुरानी फसल के कन्दों (corms) को ३ इंच गहरे गाड़ देना चाहिये। अप्रैल से जुलाई तक इसकी बोवाई होती है। ९-१० महीने में फसल तैयार हो जाती है। प्राय: फरवरी-मार्च के महीने में जब नीचे के पत्ते पीले होने लगें, तो कन्दों को खोद लेते हैं। एक एकड़ में २५,००० पौण्ड तक उपज देखी गयी है, अर्थात् लगभग से ८-१० गुनी फसल मिलती है। कभी-कभी कुछ कीटाणुओं के कारण इसके पत्ते समय से पूर्व पीले होने लगते हैं, तथा सूख भी जाते हैं। ऐसी अवस्था में उन पौधों को दूर कर देना चाहिये तथा कीटाणुनाशक दवा के घोल का छिड़काव करना चाहिये।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**हलदी की सिझाई** (curing of tumeric)

कच्ची हलदी का प्रयोग बहुत कम होता है, इसलिए पहले इसे सिझाते हैं। सिझाने के लिए कच्ची हलदी को खोदकर एक स्थान पर इकट्ठा कर इसी के पत्तों से ढंककर कुछ दिनों तक रखते हैं, फिर मिट्टी या लोहे के बरतन में उबालते हैं। उबालते समय इसके २-३ इंच ऊपर तक पानी डालकर इसी की पत्तियों से ढंक देते हैं। १-५ घण्टे तक उबालने अथवा मुलायम हो जाने पर छानकर धूप में सुखा लेते हैं। ५-७ दिन तक सुखाने के पश्चात् हाथों से रगड़कर साफ कर लेते हैं। पीलापन तथा अधिक चमक लाने के लिए इसे हलदी मिले हुए इमली के घोल में डुबाते हैं या अन्य उपायों से चमकदार (polished) करते हैं।

हलदी के कन्द का मध्य भाग स्थूल होता है तथा उसमें अंगुली के आकार की शाखाएं लगी होती हैं। बड़ी-बड़ी शाखाओं को अलग कर लेते हैं, क्योंकि ये उत्तम मानी जाती हैं। इसके बाद मध्य भाग तथा छोटे-छोटे टूटे हुए टुकड़ों को भी पृथक् कर लेते हैं। कच्ची हलदी से लगभग १७-२५% सिझाई हुई हलदी प्राप्त होती है।

**रासायनिक विश्लेषण**

हलदी के कन्द का रासायनिक विश्लेषण करने पर आर्द्रता १३·१%, प्रोटीन ६·३%, वसा तथा स्थिर तैल ५·१%, खनिज द्रव्य ३·५%, तन्तु २·६%, कार्बोज ६९·४%, उड़नशील तैल १%, तथा इसके अतिरिक्त कैरोटिन, कर्कुमिन एवं रंजिकद्रव्य प्राप्त होते हैं।

**हलदी के उपयोग**

इसका बाह्य तथा आभ्यन्तर, दोनों प्रकार से चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है। सूजन तथा दर्द के स्थानों पर, विशेषकर आघात लगने पर इसका लेप करते हैं। कच्ची हलदी का रस त्वचा पर लगाने से बाह्य कृमि मर जाते हैं तथा खाज आदि त्वचा के रोग दूर होते हैं। त्वचा के रंग को सुधारने के लिए इसे उबटन के रूप में लगाते हैं। फोड़े को पकाने के लिए इसकी पुल्टिस (poultice) और घाव को शीघ्र भरने के लिए इसके चूर्ण का मलहम लगाते हैं। आंख के शोथ में इसे हलका गरम करके सेंकते हैं। इसके धूम्र के

**सामान्य हलदी में भी भिन्न-भिन्न जलवायु में उत्पन्न होने के कारण थोड़ी विशेषता आ जाती है**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवन से श्वास, हिचकी और मूर्च्छा में लाभ होता है।

हलदी का अन्तः प्रयोग करने पर यह रुचिवर्द्धक, क्षुधावर्द्धक, पाचक, हलकी दस्तावर तथा यकृत् से पित्त का स्राव कराती है, इसलिए इसका प्रयोग अरुचि, मन्दाग्नि, कब्ज, कामला और यकृतप्लीहा की वृद्धि में किया जाता है। दुग्ध के साथ उबालकर इसके प्रयोग से सर्दी-जुकाम तथा खांसी में लाभ होता है। श्वास-नलिकाओं के संकोचन को दूर करने से यह श्वासरोग में भी हितकर है। यह एक उत्तम रक्तशोधक मानी जाती है और इसके कुछ दिन तक प्रयोग करने से रक्तदोष से होने वाले फोड़े-फुंसियां, कुष्ठ, शीतपित्त आदि रोग सदा के लिए दूर हो जाते हैं। प्रमेह तथा पुराने बुखार में भी यह लाभप्रद है।

चिकित्सा के अतिरिक्त हलदी के अन्य व्यावसायिक उपयोग भी हैं। मसाले के रूप में यह अधिकतर प्रयोग की जाती है। ऊनी, रेशमी तथा सूती कपड़ों तथा कागज के रंगने में इसका उपयोग किया जाता है। खाद्य पदार्थ तथा ओषधि-निर्माण आदि व्यवसायों में भी इसका रंजक द्रव्य के रूप में व्यवहार करते हैं। किसी घोल की क्षारीयता (alkalinity) की जांच के लिए इससे रंगे पत्रों का ब्रिटिश फार्मेकोपिया (British Pharmacopia) में (official reagent) के रूप में समावेश किया गया है। धार्मिक दृष्टि से यह शुभसूचक मानी जाती है और विवाह आदि शुभावसरों पर इसका प्रयोग किया जाता है। ●

---

## ग्राहकों से निवेदन

विज्ञान-लोक की एक प्रति का मूल्य ७५ पैसे है। एक वर्ष का शुल्क ९ रुपये, दो वर्ष का १६ रुपये तथा तीन वर्ष का २० रुपये (विशेष रियायत) है।

पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखें। विज्ञान-लोक जिस लिफाफे में आपके पास आता है, उसी पर आपकी ग्राहक संख्या आपके पते के ऊपर लिखी रहती है।

पता बदलने की सूचना हमें एक मास पूर्व प्राप्त होनी चाहिये। इसके लिए नया और पुराना, दोनों पते भेजें। यदि छह मास से कम के लिए पता बदलवाना हो, तो कृपया अपने डाकखाने से इसकी व्यवस्था कर लें।

नये ग्राहकों को मनी-आर्डर कूपन पर अपना नाम, पूरा पता तथा किस अंक से विज्ञान-लोक भेजा जाय, यह अवश्य लिखना चाहिये।

पुराने ग्राहक अपनी सदस्यता का नवीयन (renewal) कराते समय मनी-आर्डर कूपन पर अपना नाम, पूरा पता तथा ग्राहक संख्या लिखने की कृपा करें।

**विक्रय-व्यवस्थापक ※ विज्ञान-लोक ※ हास्पिटल रोड, आगरा–३**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# परमाणु-शक्ति

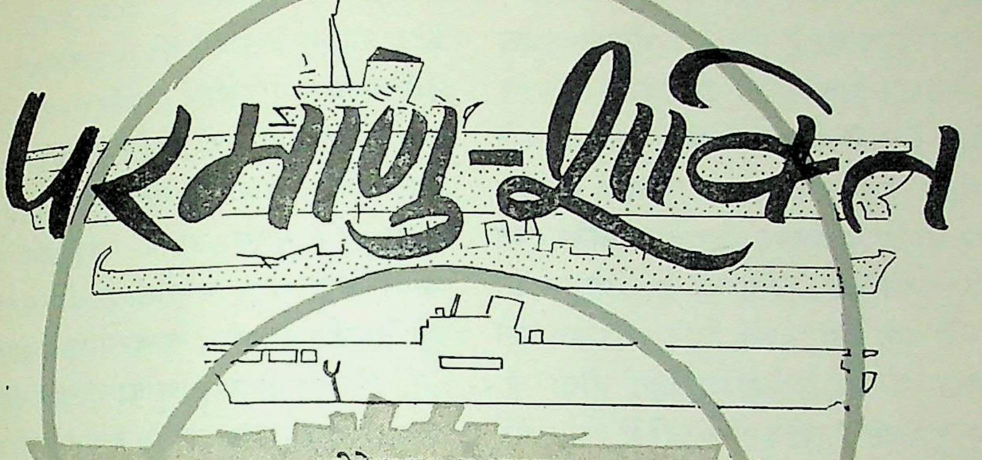

वीरेन्द्रकुमार भटनागर

ज्यों-ज्यों सभ्यता बढ़ती गयी मनुष्य नये-नये शक्ति-स्रोतों की खोज करता गया। फिर भी कभी उसे सन्तोष न हुआ। यह तो मानव-स्वभाव है, पुरातन काल से नये और और नये के बारे में जानने की इच्छा बढ़ती रही है। इन्हीं नयी शक्तियों की खोज के अन्तर्गत मनुष्य को परमाणु-शक्ति का ज्ञान हुआ।

परमाणु-शक्ति ने संसार को आश्चर्य-चकित कर दिया है। नागासाकी और हिरोशिमा के परिणामों को कौन भूल सकता है? लेकिन वह तो परमाणु-शक्ति का एक दानवी रूप था। कभी यह भी समस्या थी कि इस भीषण शक्ति को किस प्रकार अधीन किया जाय। लेकिन अब वैज्ञानिकों ने उसे भी काबू में कर लिया है। आज के संसार में परमाणु-शक्ति एक वरदान और एक अभिशाप, दोनों ही रूपों में सामने आ रही है।

**शक्ति का ह्रास नहीं होता**

इस अपार शक्ति की तह में है क्या? यह आती कहां से है? यह शक्ति एक वैज्ञानिक नियम पर निर्धारित है और वह नियम है—संसार अमर है, अर्थात् दुनिया में कोई वस्तु नष्ट नहीं होती अपितु उसके रूप बदलते रहते हैं। उदाहरणार्थ हम एक मोमबत्ती जलाते हैं, तो देखते हैं कि वह धीरे-धीरे गायब हो जाती है। यह कह सकते हैं कि मोमबत्ती जलकर नष्ट हो गयी लेकिन वास्तविकता यह है कि मोमबत्ती ने केवल रूप बदला है, नष्ट नहीं हुई है। मोमबत्ती का कुछ भाग मोम बनकर पिघल गया। कुछ भाग विभिन्न गैसों में बदलकर वायुमण्डल में मिल गया और शेष भाग जलकर ताप और प्रकाश की शक्ति के रूप में बदल गया। मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि यदि कोई वस्तु नष्ट होती है तो नया रूप धारण कर लेती है।

इस युग में परमाणु-शक्ति का सबसे बड़ा स्रोत है यूरेनियम (uranium)। केवल कुछ ग्रास यूरेनियम में इतनी शक्ति होती है कि संसार का सब का सब पेट्रोलियम और कोयला उसकी बराबरी नहीं कर सकता। यह शक्ति है परमाणु-शक्ति (atomic-energy)। यह शक्ति कई गुना और बढ़ जाती है जब थोरियम (thorium) का ईंधन की भांति उपयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए यदि एक किलोग्राम यूरेनियम जलाया जाय, तो २० लाख किलोवाट प्रति घण्टा शक्ति उत्पन्न होगी, जो दो हजार टन भार के अच्छी श्रेणी के कोयले के जलने के बराबर है, अर्थात् यूरेनियम शक्ति के रूप में कोयले से बीस हजार गुना अधिक उपयोगी है। यह आश्चर्यजनक तथ्य है।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## परमाणु अविभाजित रहता है

अत्र प्रश्न यह है कि इस भीषण शक्ति का उत्तरदायी कौन है ? उत्तरदायी है केवल परमाणु। परमाणु क्या है, इसे समझने से पहले यह समझना आवश्यक है कि संसार की प्रत्येक वस्तु विद्युतीय आवेशयुक्त सूक्ष्म कणों से बनी है। ऐसे सूक्ष्म कण से बने हुए सबसे छोटे कण को जो स्वभाव में विद्युत् आवेशरहित होता है, परमाणु कहते हैं, या दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि किसी भी पदार्थ का परमाणु वह छोटा से छोटा भाग है जिसका और भाग नहीं किया जा सकता। इस परमाणु में उस वस्तु के सभी गुण विद्यमान रहते हैं। परमाणु का एक नाभिक (nucleus) होता है जिसमें धन आवेशयुक्त कण, प्रोटान तथा निष्क्रिय विद्युतीय कण न्यूट्रान होते हैं। प्रोटान और न्यूट्रान के चारों ओर ऋण विद्युतीय सूक्ष्म कणों के बादल छाये रहते हैं जिन्हें इलेक्ट्रान कहते हैं। मोटे तौर पर एक परमाणु का भार उसके प्रोटीन और न्यूट्रान के भार के योग के बराबर होता है। यह उल्लेख्य है कि एक प्रोटोन का भार १८३७ ए. एम. यू. है जो एक न्यूट्रान से १.००७५८ ए. एम. यू. गुना अधिक होता है। (एक १ ए. एम. यू. $= १.६६ \times १०^{-२४}$ ग्राम।)

जिस प्रकार सूर्य सौरमण्डल के केन्द्र में स्थिर रहता है और अन्य ग्रह उसके चारों ओर घूमते हैं, उसी प्रकार प्रोटान और न्यूट्रान के चारों ओर इलेक्ट्रान चक्कर लगाते हैं; और जिस प्रकार इन सब ग्रहों और सूर्य के मध्य एक आकर्षणशक्ति काम करती है उसी प्रकार इलेक्ट्रान और प्रोटान के बीच भी एक आकर्षणशक्ति काम करती है। यह आकर्षणशक्ति सन्तुलित रहती है प्रोटान और न्यूट्रान केन्द्र में स्थिर रहते हैं और इलेक्ट्रान उनके चक्कर लगाते हैं। इलेक्ट्रान और प्रोटान के मध्य की आकर्षणशक्ति को नाभिकीय बाइण्डिग शक्ति (nuclear binding energy) कहते हैं। भिन्न-भिन्न पदार्थों के अणुओं में यह शक्ति भिन्न-भिन्न होती है। सबसे अधिक बाइण्डिग शक्ति चांदी के परमाणु में होती है और सबसे कम यूरेनियम २३८ तत्त्व के परमाणु में होती है।

किसी भी परमाणु का विघटन (disintegration) तभी सम्भव है जब किसी प्रकार उसकी बाइण्डिग शक्ति के बराबर या उससे कुछ अधिक शक्ति उस परमाणु के केन्द्र पर लगायी जाय। प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि चांदी की नाभिकीय बाइण्डिग शक्ति लगभग ८.७ Mev और यूरेनियम-२३८ की ७.५ Mev होती है। चूंकि यूरेनियम २३८ की बाइण्डिग शक्ति कम होती है, अतः इसे ही आसानी से तोड़ा जा सकता है, और परमाणु ईंधन की भांति इसका प्रयोग कर सकते हैं।

## एक महत्त्वपूर्ण क्रिया न्यूट्रान से प्रारम्भ होती है

आइंस्टीन के अनुसार शक्ति (E) किसी भी पदार्थ के विघटित भार (m) के अनुसार $E = mc^2$ समीकरण से दी जा सकती है। यहां पर c प्रकाश का शून्य (vacuum) में वेग है। यदि किसी भी परमाणु का भार किसी भी विघटन क्रिया के बाद $\Delta m$ कम हो जाता है, तो इस विघटन से एक निश्चित मात्रा की शक्ति $\Delta E$ उत्पन्न होती है जो निम्न समीकरण से दी जा सकती है—

$$\Delta E = \Delta m \times c^2$$

परमाणु-क्रिया के शुरू होने से पहले परमाणु का केन्द्र पर अपने इलेक्ट्रोस्टेटिक या बाइण्डिग शक्ति के बराबर की शक्ति का होना अति आवश्यक है। सिद्धान्ततः यह शक्ति किसी भी तत्त्व (element) के केन्द्र पर बहुत ही वेग





CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले न्यूट्रान कणों से बमबारी कराने से उत्पन्न की जा सकती है। इन न्यूट्रान कणों को बहुत ही तीव्र गति से गतिमान किया जाता है। जिस उपकरण द्वारा इन्हें गति दी जाती है उसे साइक्लोट्रान (cyclotron) कहते हैं।

परमाणु-शक्ति को उत्पन्न करने के लिए एक क्रिया की आवश्यकता होती है जो शुरू में केवल एक न्यूट्रान से आरम्भ होती है। क्रिया शुरू होने के बाद काफी अधिक मात्रा में न्यूट्रान उन परमाणुओं से बाहर निकल आते हैं, जिन पर बमबारी की जाती है। यह क्रिया स्वयं ही क्रम में रहती है। सबसे पहले यह क्रिया १९३९ में देखी गयी थी। इसे नाभिकीय विखण्डन (nuclear fission) कहते हैं।

जब सैकड़ों तीव्र गति वाले न्यूट्रान किसी भी तत्त्व पर गिरते हैं, तो उनमें से शुरू में एक न्यूट्रान तत्त्व का परमाणु केन्द्र से बाहर निकल आता है और इस प्रकार वह दो भागों में विभाजित हो जाता है। इस विभाजन क्रिया में काफी मात्रा में ऊर्जा उत्पन्न होती है जो रेडियो-सक्रिय विघटन से कई गुना अधिक होती है। लेकिन यह कोई मुख्य लाभ नहीं है। यही एक खास बात जो नाभिकीय विखण्डन में है जिससे भीषण शक्ति विखण्डन क्रिया द्वारा प्राप्त की जाती है जिसमें सैकड़ों न्यूट्रान निकल आते हैं। ये न्यूट्रान और भी काफी वेग वाले होते हैं। ये वेग वाले न्यूट्रान पास के परमाणु कणों के केन्द्र पर प्रहार करते हैं जिससे और अधिक मात्रा में न्यूट्रान निकलने शुरू हो जाते हैं। जिस मात्रा में यह प्रतिक्रिया बढ़ती जाती है उसी मात्रा में ऊर्जा भी बढ़ती जाती है।

**नाभिकीय विखण्डन क्रिया और सूत्रों का जाल**

अब हमें यह देखना है कि यूरेनियम २३५ से कितनी ऊर्जा उत्पन्न हो सकती है। प्रयोगों द्वारा यह देखा गया है कि नाभिकीय विखण्डन में यूरेनियम परमाणु दो भाग में विभक्त हो जाता है जिनकी भार संख्या (mass number) ९५ और १३९ है और योग २३४ है। बाकी बचे हुए दो-आण्विक-भार-इकाई (two atomic mass unit) दो न्यूट्रान स्वतन्त्र करते हैं जिन्हें निम्नलिखित सूत्र से दिखा सकते हैं—

$${}_{92}U^{235} + {}_{0}n^{1} = {}_{92}U^{95} + {}_{92}U^{139} + 2n^{1}$$

यहां $U^{235}$ का परमाणु भार (atomic mass) २३५·१२४ ए.एम.यू. तथा एक न्यूट्रान का भार १.००८९ ए.एम.यू. है, अतः नाभिक विखण्डन क्रिया से पहले कुल भार २३५·१२४ +१·००८९=२३६·१३२९ ए.एम.यू. हुआ। यह जानना लाभदायक होगा कि इस यूरेनियम के स्थिर आइसोटोपों (isotopes) का भार जिनकी भार संख्या ९५ और १३९ है, क्रमशः ९४.९४५ और १३८.९५५ है और स्वतन्त्र हुए न्यूट्रान का भार २ × १·००८९= २·०१७८ ए.एम.यू. है, अतः भार की कमी (सम्पूर्ण क्रिया में)——

$$\Delta m = २३६·१३२९ -- २३५·९१७८$$
$$= ०·२१५१ \text{ ए. एम. यू.}$$

अतः उत्पन्न ऊर्जा——

$$\Delta E = \Delta m \times c_2.$$
$$= (०·२१५१ \times १·६६ \times १०^{-२४})(३ \times १०^{१०})^{२}।$$

क्योंकि १ ए.एम.यू. $= १·६६ \times १०^{-२४}$ ग्राम और $c = ३ \times १०^{१०}$ से.मी./प्र.से.

अतः——

$$\Delta E = ०·२१५१ \times १·६६ \times १०^{-२४} \text{ ग्राम} \times ९ \times १०.^{२०}$$
$$= ०·२१५१ \times १·४९ \times १०^{-३} \text{ (अर्ग)}$$
$$= ०·२१५१ \times १·४९ \times १०^{-३} \times १०^{-७} \text{ जूल}$$
$$= ०·२१५१ \times १·४९ \times १०^{-१०} \text{ जूल।}$$

चूंकि $१०^{७}$ अर्ग = १ जूल



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और १ जूल = ६·२४२ × १०$^{१८}$ ev

अतः △ EZ0·2151 × १·४९ × १०$^{-१०}$

६·२४२ × १०$^{१८}$ ev

= ०·२१५१ × ९३१ × १०$^{६}$ ev

= २०० Mev (लगभग)।

वास्तविक विखण्डन क्रिया में $U^{235}$ से उत्पन्न हुई ऊर्जा १९५ से २०० Mev होती है, अतःएक किलोग्राम $U^{235}$ के केन्द्र से विखण्डन क्रिया में उत्पन्न हुई ऊर्जा ४.७५×१०२६, होगी एक किलोग्राम $U^{235}$ से उत्पन्न हुई ऊर्जा २,००,००,००० किलोवाट अवर होगी।

**श्रृंखला प्रक्रिया को नियन्त्रित करना आवश्यक है**

जब एक न्यूट्रान एक परमाणु के केन्द्र से टकराता है, तो दो न्यूट्रान स्वतन्त्र होते हैं। इन दो न्यूट्रानों से चार, और चार से आठ और आठ से सोलह। इस प्रकार न्यूट्रानों की संख्या बढ़ती जाती है।

इस क्रिया को श्रृंखला प्रक्रिया (chain-reaction) कहते हैं। जब श्रृंखला प्रक्रिया शुरू हो जाती है, तो इससे अपरिमित मात्रा की उष्मा ऊर्जा उत्पन्न होती है, और यदि यह श्रृंखला प्रक्रिया नियन्त्रित न की जाय, तो एक समय ऐसा आयेगा कि भीषण विस्फोट हो जायेगा (यही सिद्धान्त परमाणु बम में लागू होता है)।

यह श्रृंखला प्रक्रिया नियन्त्रित की जाती है ताकि एक सुनिश्चित मात्रा से अधिक उष्मा ऊर्जा न उत्पन्न हो सके। तभी इस उष्मा ऊर्जा को उपयोगी कार्य में ला सकते हैं। जब उष्मा ऊर्जा उत्पन्न हुई और भली भांति नियन्त्रित हो गयी, तो इसे विद्युत उत्पादन में भी ला सकते हैं।

यह नियन्त्रित श्रृंखला प्रक्रिया एक उपकरण में सम्पन्न जाती है जिसे परमाणु भट्टी (atomic reactor) कहते हैं। परमाणु भट्टी एक विशेष प्रकार की भट्टी होती है जिसमें परमाणु एक-एककर जलते हैं और मुख्यतः उष्मा ऊर्जा उत्पन्न होती हैं।

यह शक्ति ठण्डे करने वाले यन्त्रों (coolent) द्वारा ग्रहण कर ली जाती है जिसके द्वारा यह शक्ति काफी दूर तक भेजी जा सकती है।

एक परमाणु भट्टी में निम्नलिखित मुख्य भाग होते हैं—

१. ईंधन (reactor core)
२. मन्दक (moderator)
३. शीतलीकारक (coolent)
४. नियन्त्रण-छड़ें (control-rods)
५. परावर्तक (reflector)
६. रक्षक (shield)

**ईंधन**

ईंधन द्वारा रिऐक्टर कोर बनाये जाते हैं जो यूरेनियम २३८ से भरपूर होते हैं। फिर भी इनके स्थान पर प्लूटोनियम (plutonium) और कृत्रिम यूरेनियम-२३३ (artificial $U^{२३३}$) का भी उपयोग कर सकते हैं।

**मन्दक**

श्रृंखला-प्रक्रिया को नियन्त्रित करने के लिए मन्दक की आवश्यकता होती है। मन्दक कम भार-संख्या वाले तत्वों का बना होता है जिसमें अत्याधिक मात्रा में न्यूट्रानों सोखने की क्षमता होती है। जो वस्तुएं मन्दक की भांति उपयोग में लायी जाती हैं, वे हैं—साधारण पानी, भारी पानी (heavy-water), बेरीलियम (barilium), बेरीलियम आक्साइड (barilium oxide), ग्रेफाइट (graphite), कुछ अन्य कार्बनिक पदार्थ आदि।

इन सब में सबसे अच्छा मन्दक भारी पानी (heavy water) होता है, लेकिन यह बहुत ही मंहगा पड़ता है, क्योंकि साधारण



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

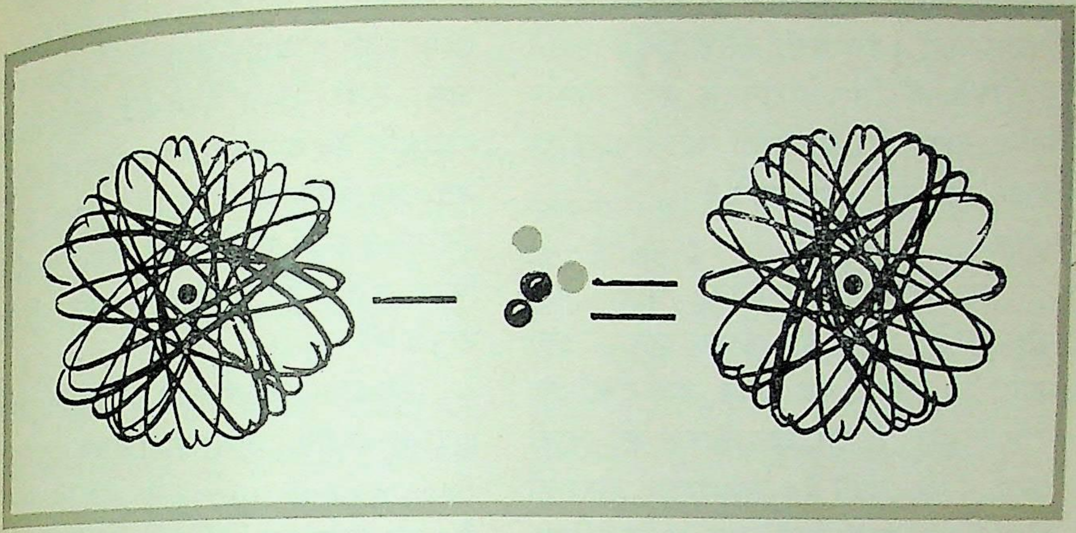

भारी नाभिक वाले परमाणुओं की रेडियो-सक्रियता का एक उदाहरण। एक अल्फा कण विसर्जित करके नाभिक अतिरिक्त भार से मुक्त हो जाते हैं (चित्र)—जब अल्फा कण—एक हीलियम नाभिक—रेडियम नाभिक से पृथक होता है, तो रेडियम (Ra) रेडन (Rn) में परिवर्तित हो जाता है
$(^{226}_{88}Ra - ^{4}_{2}He = ^{222}_{86}Rn)$

पानी में इसका अनुपात १ : ६,००० होता है।

**शीतलीकारक**

शीतलीकारक का उपयोग निम्नलिखित कारण से करते हैं—विखण्डन द्वारा उत्पन्न हुई ताप उर्जा को बाष्प उत्पादक यन्त्र (boiler) तक पहुंचाने के लिए, जिससे क्रियाकारक का तापक्रम स्थिर रहे और दीवारें अत्यधिक तापक्रम पर पिघल अथवा धसक न जायें। विखण्डन से उत्पन्न-उर्जा की मात्रा शीतलीकारक द्वारा ले आयी गयी ऊर्जा के समानुपाती होती है।

आमतौर पर निम्नलिखित शीतलीकारक का उपयोग होता है—हवा, कार्बन डाई-आक्साइड गैस ($Co_2$), हाइड्रोजन गैस ($H_2$), हीलियम गैस (He), साधारण पानी, कार्बनिक द्रव पदार्थ (organic liquids), सोडियम (Na), पोटैशियम (K), पोटैशियम-सोडियम मिश्रधातु (K-Na alloy) और लेड-विसमथ मिश्रधातु (Pb-Bi alloy) इत्यादि।

**नियन्त्रण-छड़ें**

नियन्त्रण-छड़ों का उपयोग नाभिकीय विखण्डन को एकदम रोकने या विखण्डन को नियन्त्रित करने के लिए किया जाता है। नियन्त्रण-छड़ें बोरोन (boron) और कैडमियम (cadmium) की बनी होती हैं। इन धातुओं में न्यूट्रान को सोखने का गुण होता है, अर्थात् इन पर गिरने वाले सभी न्यूट्रानों को ये बिना किसी अपने नुकसान के सोख लेती हैं। श्रृंखला प्रक्रिया को किसी भी गति पर इन छड़ों की स्थिति के अनुसार स्थिर रखा जा सकता है और कैडमियम या बोरोन की छड़ों को और अधिक क्रियाकारक के अन्दर खिसकाकर श्रृंखला प्रक्रिया को एकदम रोका जा सकता है।

**परावर्तक**

ये भी उसी पदार्थ के बने होते हैं जिनका मन्दक बना होता है। तीव्र गति वाले कण यानी न्यूट्रान अपनी तीव्र गति के कारण काफी मात्रा में शक्ति अपने में निहित रखते हैं और इनमें यह सामर्थ्य होती है कि किसी



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी क्रियाकारक की दीवार को छेदकर बाहर निकल जायें। इन कणों को बाहर निकलने से रोकने के लिए परावर्तक का उपयोग किया जाता है। ये भट्ठी की दीवारों पर अन्दर की तरफ लगाये जाते हैं।

**रक्षक**

जो न्यूट्रान परावर्तक द्वारा नहीं रोके जाते उन्हें इस रक्षक द्वारा रोका जाता है। रक्षक ७ फुट मोटी, कंक्रीट की एक दीवार होती है जो क्रियाकारक को चारों तरफ से घेरे रहती है। इस दीवार द्वारा ही भट्ठी पर काम करने वाले व्यक्ति रेडियो-सक्रिय किरणों (गामा और न्यूट्रान) से बच पाते हैं। थोड़ी मात्रा में न्यूट्रान किरणों से मनुष्य की मृत्यु हो सकती है। गामा किरणें कुछ कम संघातक होती हैं, लेकिन थोड़े से ही समय में ये भी मनुष्य की मृत्यु का कारण बन सकती हैं।

**विद्युत शक्ति का उत्पादन**

नाभिकीय विखण्डन में जितनी ऊर्जा उत्पन्न होती है वह करीब-करीब सब की सब उष्मा ऊर्जा में बदल जाती है। यूरेनियम में उष्मा ऊर्जा उत्पन्न करने का घनत्व सैकड़ों वाट प्रति घन सेण्टीमीटर तक पहुंच सकता है। अतः अब केवल यह समस्या रह जाती है कि इस उष्मा ऊर्जा को किस प्रकार स्थानान्तरित किया जाय, और इससे किस प्रकार विद्युत् उत्पन्न की जाय।

इसका सरल तरीका है कि शीतलीकारक द्वारा लायी गयी उष्मा ऊर्जा वाष्प उत्पादकों (steam generators) में भेज दी जाती है। यह उष्मा ऊर्जा वाष्प उत्पादकों को गरम करती है और काफी मात्रा में भाप उत्पन्न होती है। इस उत्पन्न हुई भाप को वाष्प टरबाइनों (steam turbines) को चलाने के उपयोग में लाया जाता है। अब इन चलती हुई टरबाइनों से बड़े-बड़े विद्युत् उत्पादक (electric generator) आसानी से चलाये जा सकते हैं और यूरेनियम की थोड़ी मात्रा से बहुत ही अधिक विद्युत् शक्ति उत्पन्न की जा सकती है।●

## बृहस्पति उपग्रहों में अस्थायी वातावरण

सोवियत खगोल-शास्त्रियों ने बृहस्पति के तीन उपग्रहों में अस्थायी वातावरण का पता लगाया है। इसकी पुष्टि पुलकोवो वेधशाला में प्राप्त वर्णक्रम चित्रों ने कर दी है।

खगोल-शास्त्रियों ने वर्णक्रम चित्रों में विशेष प्रकार की अवशोषण रेखाएं देखी हैं। इन रेखाओं के अध्ययन से पता चलता है कि खगोलीय पिण्ड में वातावरण है। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि सूर्य के वर्णक्रम चित्रों में इस प्रकार की रेखाएं नहीं हैं।

यह पाया गया है कि ये अवशोषण रेखाएं कभी दिखायी देती हैं, कभी नहीं। इस तथ्य के आधार पर खगोल-शास्त्रियों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि बृहस्पति के उपग्रहों में वातावरण है, किन्तु अस्थायी प्रकृति का है।

## नये प्रकार का रेडियो दूरदर्शी

इस ब्रह्माण्ड में ऐसे अनेक नक्षत्र हैं जो रेडियो संकेत भेजते रहते हैं। इन दूरस्थ पिण्डों का अध्ययन करने के लिए रेडियो दूरदर्शी आवश्यक होता है। रूस की यूक्रेनियन अकादमी आफ साइन्सेज के रेडियो भौतिकी संस्थान द्वारा खार्किव नामक स्थान पर एक नये रेडियो दूरदर्शी का निर्माण किया जा रहा है।

इस दूरदर्शी का आकार अंगरेजी अक्षर टी (T) की तरह होगा।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विज्ञान के बढ़ते चरण...

तेजनारायण सक्सेना

अगर भारत में आज दूध की नदियां सूख चुकी हैं तो क्या हुआ। इस युग में एक ऐसा भी देश है जहां दूध के नल बहते हैं। वह देश है यूरोप का स्विट्जरलैण्ड।

आल्प्स पर्वत की बर्फीली चोटियों पर पनीर बनाने के लिए यह आवश्यक है कि दूध गाय से निकलने के डेढ़ घण्टे के भीतर मशीन में पहुंच जाय। इसके लिए विभिन्न साधनों का प्रयोग किया गया लेकिन उनमें समय के साथ-साथ खर्च भी अधिक लगा। अन्त में प्रयोगों के बाद प्लास्टिक के बने नल दुग्धवाहन के लिए सर्वोत्तम पाये गये। इन नलों ने दुर्गम घाटियों के बीच ट्रकों और ट्रालियों के भेजे जाने का खतरा भी मिटा दिया।

इन दुग्धवाहक नलियों को लैक्टो-डक्ट्स (lactoducts) कहते हैं। इनका व्यास आधा इंच होता है। इन्हें पृथ्वी के भीतर प्रायः डेढ़ फुट की गहराई में बिछाया जाता है। जहां घाटियां या नदियां रास्ते में पड़ती हैं, वहां इन्हें तार के रस्सों द्वारा लटका दिया जाता है। एक गांव में इन नलों का सत्ताईस मील लम्बा जाल बिछा है; इसके बावजूद वहां और नल बिछाये जाने की योजना है।

**वातानुकूलित व्यक्ति**

और नलियों में दूध बहता रहेगा...लेकिन क्या आदमी वातानुकूलित हो सकता है?

अभी तक आप घरों, कारखानों, छविगृहों आदि को ही वातानुकूलित होते देखते थे। शायद वह समय भी जल्द आ सकता है, जब हम स्वयं भी वातानुकूलित होकर यहां-वहां घूम सकेंगे! यदि ऐसा हुआ, तो इसका श्रेय निश्चय ही अमरीका के ऐकिन (Aiken) शहर की सैवाना नदी प्रयोगशाला में हो रहे अनुसन्धान को देना होगा, जहां वैज्ञानिक इस काम में लगे हैं। वे उठाये जा सकने वाले (portable) वातानुकूलक (air-conditoi-ner) बनाने के लिए खोज कर रहे हैं। इसे व्यक्ति अपनी भुजाओं में तावीज की तरह बांध सकेंगे, या कमरबन्द में अटका सकेंगे।

साथ ही वे एक छोटा-सा रेफ्रीजिरेटर भी बना रहे हैं। इसका सबसे बड़ा लाभ कारखानों में काम करने वाले उन मजदूरों को होगा जिन्हें उष्ण कमरों में रक्षात्मक कपड़े पहनने पड़ते हैं। अनुमान है कि यह रेफ्रीजि-रेटर एक फुट लम्बा होगा और इसका भार लगभग छह औंस होगा। इसे शरीर के साथ कपड़ों के भीतर ऐसी जगह बांधा जा सकेगा, जहां यह शरीर के अवयवों के चलाने में बाधक न बने। यह यन्त्र १९३७ में एक फ्रांसीसी धातु-विशेषज्ञ द्वारा निर्मित उपकरण, 'वोर्टेक्स ट्यूब' (vortex tube) के आधार पर बनाया जा रहा है।

**एक...दो...तीन!**

...विज्ञान के चरण बढ़ते जा रहे हैं।

इंग्लैण्ड में हुए एक अनुसन्धान ने तैराकों की शिकायतें दूर की हैं। इस यन्त्र का प्रमुख सरकिट (circuit) हर आरम्भ स्थान पर लगे एक-एक ध्वनि यन्त्र को एक साथ चलाने के साथ-साथ तैराकों के खड़े होने के प्लेटफार्म में कम्पन पैदा करता है। पुरानी विधि के अनुसार प्रतियोगिताएं गोली दागकर शुरू की जाती रही हैं। इस नयी खोज से पुरानी प्रथा की कमियों को हटा दिया गया है। इसका सबसे अधिक लाभ उठायेंगे वे तैराक जिनकी श्रवण शक्ति कमजोर है और वे, जो बन्दूक के दागने के स्थल से दूर रहते हैं, क्योंकि यह





CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाया गया है कि बन्दूक के पास का पहला प्रतियोगी अपने अन्तिम प्रतियोगी की तुलना में ०.०६ सेकण्ड पहले ही धमाके को सुनकर चल देता है। इससे उसे औरों की तुलना में निश्चय ही लाभ होता है।

दो प्रतियोगियों के बीच समय के इस फर्क को हटाने के लिए प्रतियोगी को पहले इलेक्ट्रानिक विधि से नियन्त्रित छड़ों को पकड़े रहना होगा। यदि प्रतियोगी समय से पहले छड़ को छोड़ देगा, तो इससे एक स्वचालित अलार्म बज उठेगा। अलार्म के बजते ही प्रतियोगी के पथ पर अपने-आप एक रस्सा गिर पड़ेगा और उसका पथ अवरुद्ध हो जायेगा। प्रतियोगिता के अन्त में तैराकों को रबर के एक हत्थे को छूना होगा जिसका सम्बन्ध धातु की एक प्लेट से होगा। धातु की प्लेट पर धक्का पड़ते ही उक्त पथ पर लगी घड़ी बन्द हो जायेगी और प्रतियोगी द्वारा लगाया गया समय घड़ी में दर्ज हो जायगा।

आरम्भ तथा समयांकन की यह विधि एक सेकण्ड के हजारवें भाग तक सही समय अंकित करती है। इसका संचालन एक मेगासाइकल क्रिस्टल आसिलेटर (one megacycle crystle oscillator) द्वारा होता है जो एक ही समय में एक साथ आठ पथों पर नियन्त्रण रख सकता है।

**पाइपलाइन द्वारा यात्रियों का पार्सल!**

…और दौड़ की बात अलग…

कनीक इंस्टीट्यूट, अमरीका के जे. वी. फोया एक अनोखा प्रयोग कर रहे हैं। अमरीका थलसेना से उन्हें दस लाख डालर की वित्तीय सहायता मिली है। फोआ के प्रयोगों से अब जेट-शक्ति द्वारा गतिमान डिब्बों के भीतर पहले सामान और फिर मनुष्य को भी दो हजार मील प्रति घण्टे की गति से भेजा जा सकेगा। यह गति प्रस्तावित यात्री सुपरसोनिक विमान की गति से भी अधिक है।

आजकल फोआ न्यूयार्क के पास मिली तीन मील लम्बी भूमि में ऐसी ही एक पाइप-लाइन बिछाने में व्यस्त हैं। वे सोनिक (sonic) दबाव को निष्क्रिय करने के अतिरिक्त प्रस्तावित जेट-गाड़ी के सन्तुलन तथा उसे ताप के कुप्रभावों से बचाने के उपायों पर भी खोज कर रहे हैं।

देखना है कि वे कब सफल होते हैं और इस हवा में उड़ने के स्वप्न देखते-देखते कब हवा की जगह भूमि के भीतर बिछी पाइप-लाइन में ही उड़ने में सफल हो पाते हैं। ●

## मानसिक रोगों की जांच के लिए नया उपकरण

**अमरीका में मानसिक रोगों की जांच के लिए एक नया उपकरण तैयार किया गया है। जिस व्यक्ति के मस्तिष्क की जांच करनी होती है, उसके मस्तिष्क में पहले सूई द्वारा रेडियो-सक्रिय पदार्थ पहुँचा दिया जाता है। उसके बाद इस यन्त्र के प्रोब को उस मनुष्य के सिर पर रखकर आगे-पीछे सरकाते हैं। ये प्रोब रेडियो-सक्रिय पदार्थों से निकलने वाले विकिरणों का पता लगाते हैं, और उनसे प्राप्त होने वाले सन्देश कागज पर बिन्दुओं के रूप में और फोटोग्राफिक फिल्म पर प्रकाश के रूप में अंकित हो जाते हैं। ये संकेत चिकित्सकों को मानसिक विकारों का पता लगाने में सहायता देते हैं।**

## उष्ण ब्रह्माण्ड का सिद्धान्त

**सोवियत रूस के विताली गिंजवर्ग तथा लियोनिड ओर्जेनय नामक वैज्ञानिकों ने यह स्थापना दी है कि हमारी पृथ्वी उतनी ठण्डी नहीं जितनी हम उसे समझते हैं। कास्मिक किरणें अन्तरिक्ष में शक्तिशाली अधिवाह प्रक्षेपित करती हैं। ये अधिवाह प्लाज्मा किरणें उत्पन्न करते हैं जो बड़ी मात्रा में उष्मा में रूपान्तरित हो जाती हैं।**





CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विज्ञान-क्लब

प्रिय बच्चो,

निश्चय ही पिछले दिनों तुम अपनी परीक्षाओं में व्यस्त थे, फिर भी पत्र लिखने के लिए समय निकालते रहे। इस बार मिले तुम्हारे पत्रों में अधिकांश डाक्टर पीटर द्वारा आविष्कृत उस दवा के सम्बन्ध में है जिसके प्रभाव का वर्णन मार्च अंक की वैज्ञानिक कहानी **'नवरसायन'** में है। कुछ सदस्यों ने पूछा है कि यह दवा कहां मिलती है और सामान्य असर के लिए कितनी मात्रा में इसका सेवन करना चाहिये।

**'नवरसायन'** प्रसिद्ध कहानीकार एच.जी. वेल्स की कल्पना है। यह कहना कठिन है कि क्या कभी कोई पीटर नामक डाक्टर था और उसने ऐसी दवा का आविष्कार करना चाहा था।

यदि एच. जी. वेल्स जीवित होते तो इस प्रश्न का उत्तर दे सकते। फिर भी सम्भावना है कि उनकी और कहानियों की तरह यह भी काल्पनिक ही है। यह उल्लेख्य है कि आज वैज्ञानिक ऐसी ओषधि बनाने का यत्न कर रहे हैं जिससे व्यक्ति की कार्यक्षमता बढ़ जाय, परन्तु शरीर के विभिन्न संस्थानों तथा अवयवों पर हानिकारक प्रभाव न पड़े। शक्तिवर्द्धक ओषधियां तो प्रचलित हैं ही।

मार्च अंक तुमने बहुत पसन्द किया, यह तुम्हारे पत्रों से विदित है—

पंकजकुमार, (बिलासपुर) : **'सेब'** (कीर्तिमोहन) में विशिष्ट पद्धतियों से सेबों की जातियों के विकास का परिचय मिलता है। **'पेंगुइन'** (विश्वम्भरदत्त नौटियाल) अत्यन्त रोचक है।

आभाकुमारी मल्होत्रा (आसनसोल) : **'ऊर्जा भंवर'** (एस.पी. मिश्र) परमाणु के असीम शक्ति-स्रोत की सम्भावनाओं से परिचय कराता है। **'पीड़ा'** (बी. मोहन) रोचक तथा सूचनाप्रधान है।

जीवनप्रसाद (वाराणसी): **'एक्सोलोटल'** (महेश्वरसिंह सूद) में एक अनोखे जन्तु से परिचय मिलता है। कृपया हर माह इस तरह का लेख दिया करें।

...और मुझे आशा है, इस बार गरमी की छुट्टियों का तुम विज्ञान के अध्ययन में सदुपयोग करोगे। तुम्हारे पत्रों की प्रतीक्षा रहेगी।

सस्नेह तुम्हारी,
**कृष्णा दीदी**

## प्रतियोगिता संख्या ७३ के विजेता

### प्रथम पुरस्कार

महेन्द्र कुलश्रेष्ठ (१४०००) जमशेदपुर।

### द्वितीय पुरस्कार

अम्बरीशकुमार १०५०० नयी दिल्ली, गोपालसिंह वर्मा १३३११ मेरठ।

### तृतीय पुरस्कार

राधेश्याम गुप्ता १५८४ आगरा।



**कूपन प्रतियोगिता संख्या ७५**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

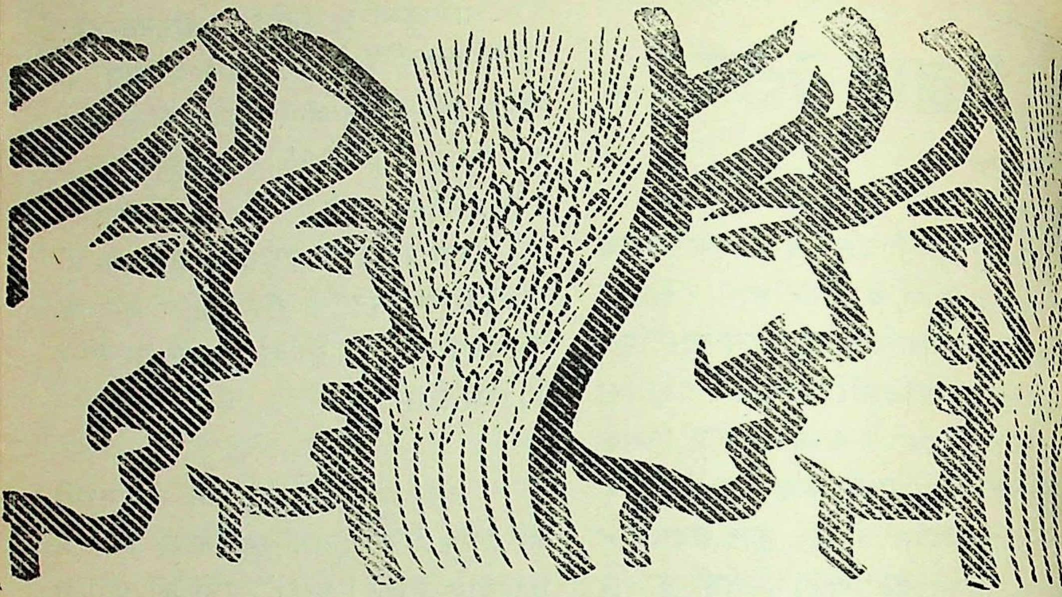

हिन्दुस्तान को अपने किसानों पर गर्व है। वे खून-पसीना एक करके फसलें पैदा करते हैं, जिससे सरहद पर तैनात सैनिकों को खाना मिलता है; कारखानों में काम करने वालों को खाना मिलता है; देश की जनता को खाना मिलता है। वे दिन रात अधिक से अधिक पैदा करने में जुटे हैं ताकि देश में ही सबके लिए अनाज पैदा हो सके। हमारे किसान समझते हैं कि जितना कम अनाज हमें विदेशों से मंगाना पड़ेगा, उतना ही अधिक धन हम देश के विकास और रक्षा पर खर्च कर सकेंगे। इस अथक मेहनत के बदले वे केवल आपका अथक परिश्रम चाहते हैं।

**एक महान देश हमारा**
**एक महान राष्ट्र**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विज्ञान क्लब के नये सदस्य

उर्मिलाकुमारी
(स. सं. ४६३)

मुहम्मद इब्राहीम
(स. सं. १८२२०)

१२,०९९ चन्द्रप्रकाश (१७) मन्दसौर, १२,१०० हरीसरनलाल (१८) लखनऊ, १ सुरेशकुमार (१६) रायपुर, २ देवेशप्रकाश (२०) जोया, ३ अरविन्दकुमार (१६) मुरादाबाद, ४ प्रतापचन्द्र (१६) मुरादाबाद, ५ भानुप्रकाश (१५) जावरा, ६ सुरेशचन्द्र (१६) अशोकनगर, ७ नरेन्द्रकुमार (१२) मुरादनगर, ८ पुण्यानन्द (१६) महिसौथा, ९ विवेकानन्द (१५) इन्दौर, १० श्यामप्रकाश (१२) कुरुक्षेत्र, ११ केवलकृष्ण (२२) चिलकाना, १२ रमेशचन्द्र (१७) कानपुर, १३ रमाशंकर (१४) गोरखपुर, १४ राजनबाबू (२२) आगरा, १५ ज्योतिप्रकाश (१५) पुलियाकलां, १६ तसनीमअहमद (१६) बीकानेर, १७ नरेन्द्रसिंह (१८) चकई, १८ कौशलेन्द्रकुमार (१४) पटसा, १९ कृष्णलाल (२१) रिवाड़ी, २० कम्बरहुसैन (२१) उज्जैन, २१ महेन्द्रकुमार (२४) खण्डवा, २२ युगलकिशोर (१२) गोंदीया, २३ अमलकृष्ण (१७) पटना, २४ मदनमोहन (१७) आगरा, २५ शैलेन्द्रकुमार (१८) धामपुर, २६ विष्णुप्रसाद (१४) इन्दौर, २७ नरेन्द्रकुमार (१६) गुलाबपुरा, २८ गोपालप्रसाद (१८) बटसार, २९ महेशचन्द्र (१८) इलाहाबाद, ३० कमलकुमार (१४) अलमोड़ा, ३१ इस्माइल (१७) नागपुर, ३२ प्रभातकुमार (१६) रांची, ३३ कृष्णगोपाल (१७) कटनी, ३४ दिनेशचन्द्र (१७) कटनी, ३५ अम्बिकाप्रसाद (१६) रायगढ़, ३६ बिमलेन्द्रनाथ (१५) पटना, ३७ देवव्रतकुमार (२२) पूर्णियां, ३८ नमित (१४) पिथौरागढ़, ३९ अमित (१४) पिथौरागढ़, ४० गोविन्द (१६) सीमरण, ४१ श्यामलाल (१८) आगरा, ४२ अरविन्दकुमार (१७) सुपौल, ४३ शशिकान्ति (१६) राजनांदगांव, ४४ शंकरलाल (११) इन्दौर, ४५ जगदीशप्रसाद (१९) जगदलपुर, ४६ देवेन्द्रकिशोर (२२) पटना, ४७ ब्रजेशकुमार (१८) गोरखपुर, ४८ सन्तोषकुमारी (१७) भरतपुर, ४९ राजकुमार (१९) मुरार, ५० प्रेमसिंह (१७) जबलपुर, ५१ विनोदकुमार (१८) अम्बाला, ५२ आनन्दबीर (१८) हल्द्वानी, ५३ विजयकुमार (१७) झुमरीतलैया, ५४ विष्णुदत्त (१८) लश्कर ५५ डाह्याभाई (२२) गोंदीया, ५६ घनश्यामप्रसाद (१७) कदमा, ५७ राजेशकुमार (१५) बांदा, ५८ प्रदीपकुमार (१४) सीतापुर, ५९ महेशचन्द्र (१८) बसेड़ारानीका, ६० भानुप्रकाश (१८) गाजीपुर, ६१ हरिनारायण (१८) रांची, ६२ एस. सी. खुराना (२०) नयी दिल्ली, ६३ प्रमिला (१७) लखनऊ, ६४ नन्दकिशोर (१७) जबलपुर, ६५ बालकृष्ण (१८) आगरा, ६६ भैरुबक्ष (१८) किशनगढ़, ६७ प्रेमचन्द्र (१३) हिंगनघाट, ६८ सुभाषकुमार (१८) इलाहाबाद, ६९ विजयकुमार (१८) अण्डाल. ७० सत्यनारायण (१८) कटनी, ७१ अवधेशकुमारसिंह (१७) आगरा, ७२ विनोदकुमार (१८) फारबिसगंज, ७३ एस. के. मिश्र (१७) मेरठ, ७४ लालबहादुर (१०) पटना, ७५ जगदीशप्रसाद (१६) परबलपुर, ७६ ज्योतिप्रकाश (१६) फुलियां, ७७ राकेश (१७) गोरखपुर, ७८ प्रदीपकुमार (१६) बड़ीसादड़ी, ७९ क्रान्तिकुमार (१९) जौनपुर, ८० नीलिमाचन्द्रा (१४) जौनपुर, ८१ सोमदत्त (१४) लखनऊ, ८२ नन्दलाल (२१) उदयपुर, ८३ सुभाषचन्द्र (१६) संगरिया, ८४ सुरजीतसिंह (१२) इन्दौर, ८५ नरेन्द्रबहादुर (१९) वाराणसी, ८६ सुधा (१६) इलाहाबाद, ८७ कु. दीपशिखा (१५) इलाहाबाद।

अनूपकुमार राय
(स. सं. १४०७६)

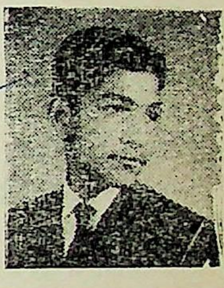

मनोजकुमार
(स. सं. १८२३६)

गफूर मुहम्मद
(स. सं. १७०७९)

राजेन्द्रकुमार
(स. सं. १८२५२)

सतीशचन्द्र
(स. सं. १७०८४)

आत्मानन्द
(स. सं. १८२७४)



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

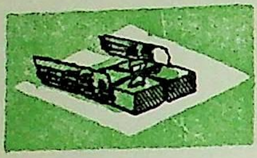

# इनाम लो

## विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ७५

| | |
|---|---|
| प्रथम पुरस्कार | २५ रु. की पुस्तकें |
| द्वितीय पुरस्कार | २० रु. की पुस्तकें |
| तृतीय पुरस्कार | १५ रु. की पुस्तकें |

**अन्तिम तिथि : १५ मई**

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५३ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्दकर निम्नलिखित पते पर भेज दो—

**कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा-३**

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ७५ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर १५ मई तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुंच जाने चाहिये। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जायेगा।

## विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ७५ के प्रश्न

१. क्या प्रोटीन के संश्लेषण (protein synthesis) पर कुछ हारमोनों का प्रभाव पड़ता है?

२. केल्टेक क्या है और कहां है?

३. अर्थशाइन (earthshine) किस प्रकाश को कहते हैं?

४. ब्रायोफाइटा (*Bryophyta*) वर्ग के पौधे एक-कोषीय होते हैं या बहु-कोषाय?

५. सरजैण्ट-मेजर (Sergeant-major) जल में रहने वाला कौन-सा जन्तु है?

६. प्राकृतिक रूप से हाथर्न (hawthorn) कितना ऊंचा होता है?

७. जबर (Geber) कौन था?

८. जिन अदृश्य अन्तरिक्षीय पिण्डों से रेडियो संकेत प्राप्त होते हैं, उनके सम्बन्ध में प्रमुख सम्भावना क्या है?

९. वाइसराय (viceroy) नामक तितली के पंखों की आड़ी रेखाएं किस रंग की होती हैं?

१०. संवृन्तबीजी (*angiospermic*) पौधे किन दो उप-विभागों में विभाजित किये जाते हैं?

## प्रतियोगिता संख्या ७३ के प्रश्नों के उत्तर

१. $F = G\frac{m_1, m_2}{r_2}$।

२. मरक्युरिक आक्साइड और लेंस की सहायता से।

३. $6CO_2 + 6H_2O + energy$।

४. प्रकाश का वेग पूर्णवेग है।

५. एक दिन।

६. एक सामान्य मणिभ (gem)

७. फूल।

८. लाइन वर्णक्रम, बैण्ड वर्णक्रम।

९. अल्ट्रासोनिक ध्वनि।

१०. वान ककड़ी।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करो और देखो

# स्टार्च प्रिंटिंग कीजिए

अ. कु. मेहरा, (स. सं. ६९९५)

पौधे सूर्य के प्रकाश में क्लोरोफिल की सहायता से अपना भोजन तैयार करते हैं। इस क्रिया के लिए पौधे वायु से कार्बन-डाइआक्साइड सोखकर उसे आक्सीजन और स्टार्च में बदल देते हैं। आक्सीजन तो उड़ जाती है, परन्तु स्टार्च वहीं पर रह जाती है। पत्तियों में बनने वाले स्टार्च का उपयोग स्टार्च प्रिंटिंग के रूप में भी किया जा सकता है।

**आवश्यक सामग्री**

एक स्टार्चरहित पत्ती (इसके लिए आवश्यक है कि सूर्य निकलने से पहले ही किसी पौधे को चुन लिया जाय, या पौधे को एक-दो दिन अंधेरे में रखकर उसकी पत्तियों को स्टार्चरहित किया जा सकता है), काला कागज, क्लिप, मेथीलेटेड स्प्रिट, आयोडीन का घोल और बेनजोल का घोल।

**विधि**

स्टार्चरहित पत्ती पौधे से तोड़ें नहीं। उस पत्ती के दोनों ओर दो काले कागजों को जिन पर आपने अक्षर काट रखे हैं, क्लिप द्वारा बांध दें (चित्र १)।

अब उस पौधे को धूप में रख दें और शाम को उस पत्ती को तोड़कर मेथीलेटेड स्प्रिट में डाल दें। इस तरह उसका रंग उड़ जायेगा। अब उस पत्ती को आयोडीन के घोल में डाल दें। जहां-जहां सूर्य का प्रकाश गया होगा, वहां-वहां स्टार्च का रंग नीला-काला हो जायेगा। पत्ती के सेल्युलोज और प्रोटोप्लाज्म का रंग आयोडीन भूरा कर देती है। इस भूरे रंग को उड़ाने के लिए पत्ती को बेनजोल के घोल में डाल देते हैं। अब पत्ती पर स्पष्ट लिखा हुआ मिल जाता है (चित्र २)। इस स्टार्च प्रिंटिंग का उपयोग नववर्ष की बधाई के उपहारों में भी किया जा सकता है। ●

(चित्र १)

(चित्र २)

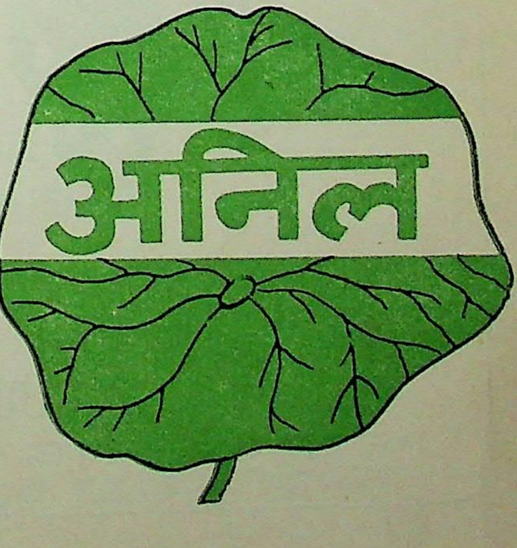




CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


जब वास्तविक सर्वश्रेष्ठ
ब्रान्डी का प्रश्न हो
तो केवल एक ही
पसन्द हो सकती है

# ट्रिपल क्राउन

ग्रेप

# ब्रान्डी

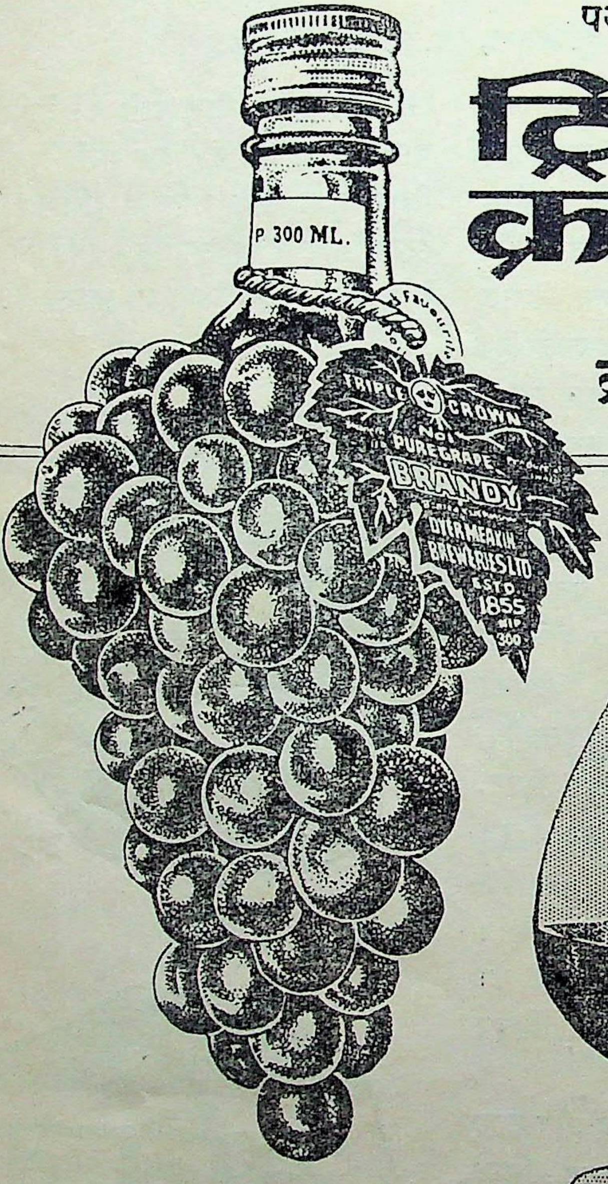


दुर्लभ ब्रान्डी
अत्यन्त दुर्लभ
बोतल में

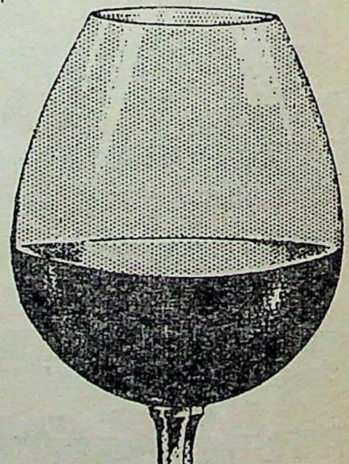

११० वर्ष से अधिक का अनुभव विश्वास की गारन्टी है

**डायर मीकिन ब्रुअरीज़ लि० स्थापित १८५५**

**मोहन नगर, (गाज़ियाबाद) यू० पी०**

सोलन ब्रुअरी — लखनऊ डिस्टिलरी — कसौली डिस्टिलरी

DMB—NP—754


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वैज्ञानिक प्रकाशन

## (हाई स्कूल एवं हायर सेकेण्डरी स्कूल के विद्यार्थियों के लिए)

**प्रारम्भिक भौतिकी** (मूल्य : ३·५०)

लेखक

**दयाप्रसाद खण्डेलवाल**

एम. एस-सी., पी-एच. डी.

**देवीसिंह विष्ठ राजकीय महाविद्यालय, नैनीताल**

**जन्तु-विज्ञान** (मूल्य : ३·००)

**वनस्पति-विज्ञान** (मूल्य : ३·००)

लेखक

**आर. डी. विद्यार्थी**

बी. एस-सी. (आनर्स), एम. एस-सी., एल.टी., एफ.एन.ए.

**ला मार्टीनियर कालेज, लखनऊ**

**सामान्य-विज्ञान** (मूल्य : ६·२५)

लेखक

**रामचरण मेहरोत्रा,** एम. एस-सी., पी-एच. डी.

**दयाप्रसाद खण्डेलवाल,** एम. एस-सी., पी-एच. डी.

**आर. डी. विद्यार्थी,** एम. एस-सी.

**प्रैक्टिकल जन्तु-विज्ञान** (मूल्य : २·००)

**प्रैक्टिकल वनस्पति-विज्ञान** (मूल्य : २·००)

लेखक

**आर. डी. विद्यार्थी**

प्रकाशक

**श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Price : 60 paise April 1966 Regd. No. L 1588

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# नीहारिका

कहानी मासिक

## अप्रैल अंक

अब सब जगह उपलब्ध है

मेहरा न्यूज़पेपर्स, हास्पिटल रोड, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar